महर्षि दयानन्द

दिव्य दर्शन

लेखिका का परिचय

5 सितंबर 1980 को हैदराबाद के एक कट्टरपंथी मुस्लिम परिवार में जन्मी मधु धामा का बचपन का नाम फरहाना ताज है। मधु धामा लेखिका एवं वेदों की प्रचारक हैं और दर्जनों भूली-भटकी युवतियों को मानव धर्म अंगीकार करवा चुकी हैं। इनके जीवन पर बहुचर्चित नाटक 'घर वापसी' का मंचन देश के विभिन्न शहरों में कई बार हो चुका है और हर बार सभी शो हिट रहे हैं। इनके जीवन पर फिल्म का भी निर्माण सावन वर्मा के निर्देशन में हुआ।

इनकी आत्मकथा घर वापसी दुनिया की 11 भाषाओं में बेस्टसैलर हो चुकी है। इसके अलावा वेदों में विज्ञान भी कई भाषाओं में प्रकाशित हुई है। इन्होंने सत्यार्थ प्रकाश का 11 भाषाओं में प्रकाशन किया है और स्वामी दयानंद सरस्वती जी के अधिकांश ग्रंथों का उर्दू में रूपांतरण एवं प्रकाशन भी किया।

मातृ-पितृतुल्य आदरणीयश्री गणेशदास गरिमा गोयल जी, दिल्ली निवासी को सादर समर्पित, जिन्होंने हमेशा ऋषि दयानंद का मिशन आगे बढ़ाने की प्रेरणा दी।

महर्षि दयानन्द

दिव्य दर्शन

लेखिका

मधु धामा

संपादन

तेजपाल सिंह धामा

चित्रांकन

चारू खान, कलकत्ता

शाहिम खान, गाजियाबाद

सुदर्शन, उदयपुर

आर्यखंड टेलीविजन प्राइवेट लिमिटेड

4/1663, प्रथम तल, गली नंबर 3, महाबीर ब्लॉक,

भोलानाथ नगर, शाहदरा दिल्ली - 110032

पुस्तक : महर्षि दयानन्द दिव्य दर्शन
रचनाकार : मधु धामा
संपादन : तेजपाल सिंह धामा
सर्वाधिकार : मधु धामा
ISBN No. : 978-93-92468-62-9
प्रकाशक : आर्यखंड टेलीविजन प्राइवेट लिमिटेड
4/1663, प्रथम तल, गली नंबर 3, महाबीर ब्लॉक,
भोलानाथ नगर, शाहदरा दिल्ली - 110032
फोन नंबर - 7838103843
वेबसाइट : aryakhandtelevision.com
Email : aryakhandtv@gmail.com
मूल्य : 151
प्रस्तुत संस्करण : 2023

मुद्रक : आर्यखण्ड प्रेस, दिल्ली-32

Maharshi Dayanand Divya Darshan
by: Madhu Dhama

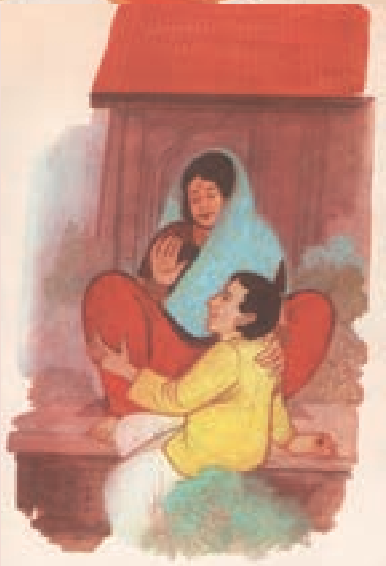

स्वामी दयानन्द का बचपन का नाम मूलशंकर था। उनका जन्म गुजरात प्रान्त के मोरबी के टंकारा नामक ग्राम में सम्वत् 1881 फाल्गुन की दशमी तिथि, दिन शनिवार अर्थात् 12 फरवरी सन् 1825 को श्री करसनजी त्रिवेदी के घर माता यशोदा बाई की कोख से हुआ। श्री करसनजी त्रिवेदी एक प्रतिष्ठित औदीच्य ब्राह्मण थे। करसनजी त्रिवेदी बड़े जमींदार थे। सरकार की ओर से लगान की वसूली करते थे। राज्य में तहसीलदार के पद पर प्रतिष्ठित होने के कारण आसपास के क्षेत्र में काफ़ी प्रभाव था। पुत्र-जन्म पर परिवार में खुशियां मनाई गईं। मिठाइयां बांटी गईं। ग़रीबों को दान दिया गया। मूलशंकर का पालन-पोषण बड़े लाड़-प्यार से हुआ।

परिवार में पूर्ण रूप से धार्मिक वातावरण था। तीन वर्ष की अवस्था में बालक मूलशंकर गायत्री मन्त्र का शुद्ध उच्चारण करने लगे थे। पांचवें वर्ष में प्रवेश करते ही विधिवत् शिक्षा प्रारम्भ की गई। देवनागरी लिपि सिखाने के लिए पंडित की नियुक्ति की गई। नित्य प्रातः पंडित जी मूलशंकर को पढ़ाने आया करते थे। मूलशंकर ने पहले कुछ संस्कृत पढ़ी, फिर यजुर्वेद कण्ठस्थ किया।

पिताजी शिव के उपासक थे और शिवपुराण की कथा सुना करते थे। वे मूलजी को भी साथ ले जाते और शिव-पूजन की महिमा बताया करते। इससे मूलजी की शिव में बड़ी श्रद्धा हो गई। उन्होंने शिव की महिमा की पुस्तकें भी पढ़ी।

शिव उनके इष्टदेव थे। शिव के उपासक शिवरात्रि को पवित्र रात्रि मानते हैं। उस दिन व्रत रखते हैं। रात को जागते और दिन को निराहार रहकर शिव का पूजन करते हैं। जब मूलशंकर की आयु चौदह वर्ष की हुई, तो उसने सोचा कि अब व्रत रखना चाहिए। पिता ने प्यार से रोका कि बालक छोटा है, व्रत का कष्ट न उठा सकेगा। परन्तु मूलशंकर ने स्वयं व्रत रखना मान लिया और पिताजी उसे शिवमन्दिर में साथ ले गए।

पहला व्रत था कुछ चाह थी, श्रद्धा थी। मूलजी ने ठानी, सारी रात जागकर शिव को खुश करें। और शिवजी दर्शन दे दें तो कुछ मांग भी लें। आधी रात होते-होते सब पुजारी और उपासक सो गए। मूल के पिताजी ने भी वहीं लम्बी तान ली। अब मूल अकेला जागने लगा। शिवलिंग पर मिठाई रखी थी, फल चढ़े थे, भीनी-भीनी सुगन्ध उठ रही थी। इतने में एक चूहा निकला। शिवलिंग के इधर-उधर फिरा, जैसे पुजारी परिक्रमा किया करता है। इधर मूलजी को आंख भी न झपकती थी। फिर-फिराकर चूहा चौकी पर चढ़ा और शिवजी से अठखेलियां करने लगा। मूलशंकर यह देखकर हक्का-बक्का रह गया। क्या यही महाशिव है, जो दैत्यों को मारता है? जो महादेव भयंकर राक्षसों को मार भगाता है, उससे आज एक चूहा क्यों हटाया नहीं जाता? क्या कैलाश पर रहने वाला यही महादेव है, जो चूहों का मल मूत्र सह रहा है? या इस चौकी को ही कैलाश पर्वत कहते हैं, जो अपनी रक्षा करने में भी समर्थ नहीं? मैं इसके लिए क्यों जागूं? व्रत से क्या लाभ, फिर भूखा क्यों मरूं?

मूलशंकर के मन में इस प्रकार की शंकाओं का दरिया-सा बह गया। उसने पिताजी को जगाया और उनसे प्रश्न किए।

''पिताजी क्या यही महादेव हैं?''

''क्या हुआ'' आंख मलता हुआ करसन जी उठा, ''क्यों आसमान सिर पर उठा रखा है।''

''शिवलिंग पर चूहे कलाबाजी...।''

''मीठा जो चढ़ा है, देखकर चूहे नहीं आएंगे, तो क्या...।''

''महादेव तो सर्व शक्तिसम्पन्न हैं ना।''

''हैं, तो फिर?''

''इन चूहों को क्यों नहीं भगाते।''

''मूर्ख बालक, मूर्ति तो पत्थर की है, फिर यह चूहों को कैसे भगाएगी?''

''पिताजी! फिर ऐसे पत्थर को पूजने से क्या लाभ जो एक चूहे को भी अपने ऊपर से न हटा सके।'' फिर उसने कहा, ''मैं घर जाकर उपवास तोड़ता हूं।''

पिता पुत्र के तर्कों से निरुत्तर होकर उसका मुख ताकता रह गया और मूल ने घर जाकर उपवास तोड़ दिया। भर पेट खाकर आराम से सोने के लिए लेट गया, लेकिन उसकी आंखों में आज नींद कहां थी? मन में तो तरह-तरह के प्रश्न उठ रहे थे। भगवान कौन है? शिव नहीं तो क्या श्रीकृष्ण हैं? पर उसकी भी तो मूर्तियां पत्थरों की हैं! यदि पत्थर में भगवान नहीं तो फिर उसका स्वरूप कैसा है? ईश्वर का रहस्य कैसा है? कहां रहता है? क्या करता है वह? इसी तरह सोचते-सोचते आखिरकार उसको नींद आ ही गयी और वह गहरी नींद में सो गया।

बच्चे के हृदय में उत्पन्न हुई नैतिक क्रान्ति के सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं किया जा सकता। क्षण भर में ही उसकी श्रद्धा मूर्तिपूजा पर से हट गई, और वह आजीवन तक रही। उसने पौराणिक कर्मकाण्ड का परित्याग कर दिया। यह घटना पिता और पुत्र में भयंकर संघर्ष उत्पन्न करने के लिए पर्याप्त थी। दोनों में संघर्ष होकर रहा। दोनों ही स्वतन्त्र प्रकृति के व्यक्ति थे, जिसके कारण पारस्परिक समझौते के द्वार बन्द हो गये। पिता पुत्र को नास्तिक समझने लगा, तो मां किसी बुरी आत्मा या भूत प्रेत का साया उसके ऊपर आया जान झाड़-फूंक वालों की शरण में चली। कोई भी ओझा, पंडित या विद्वान बालक के अंदर फिर मूर्ति-पूजा के प्रति श्रद्धा उत्पन्न न कर सका।

कुछ समय पश्चात् मूलशंकर के घर में दो मौतें हुईं। इन दो मौतों ने उनमें मृत्यु से बचने के लिए अमृत की तलाश के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न कर दी। उसकी छोटी बहन का विशूचिका से प्राणान्त हो गया। बहन की मृत्यु के समय वह उसके सम्मुख उपस्थित था। बहन की मृत्यु के समय मूलशंकर के मन में यह संकल्प बना कि वह मृत्यु के बचने का उपाय ढूंढेगा।

इसके कुछ दिन बाद ही उसके चाचा की भी मृत्यु हो गई। मूलशंकर का चाचा से बहुत स्नेह था। वह उसका गुरु और विश्वासपात्र था। चाचा-भतीजा अपने मन की बातें परस्पर किया करते थे। चाचा की मृत्यु पर मूलशंकर इतना रोया कि उसकी आंखें सूजकर लाल हो गयीं। जबकि बहन की मृत्यु पर एक आंसू भी न निकला था, इस कारण उस दिन उसे पत्थर हृदय भी कहा गया था।

घर में ये दो मौतें मूलशंकर के मन में इसको जीतने की अभिलाषा उत्पन्न करने वाली घटनायें थीं। मूलशंकर में वैराग्य के अंकुर तेजी के साथ फूट रहे थे।

मूलशंकर ने पिताजी से पूछा, " पिताजी, क्या हर किसी को मरना पड़ता है?"

"हां बेटा! जो इस संसार में पैदा होता है, उसे एक-न-एक दिन मरना ही पड़ता है।"

"तो क्या मृत्यु से बचा नहीं जा सकता।"

"बचा तो जा सकता है।"

"कैसे?"

"अमर होकर।"

"तो मैं अमर होने का प्रयास करूंगा।" पिता ने जब यह सुना तो यह आम चर्चा हो गई कि मूलशंकर कहीं संन्यासी न बन जाए, क्योंकि वह वैरागी जैसी बातें करने लगा है। इसलिए उसकी शादी की तैयारी होने लगी।

जब मूलशंकर के विवाह की चर्चा शुरू हुई तो, चारों ओर से उसके लिए रिश्ते आने लगे। हर प्रतिष्ठित परिवार चाहता था कि उसकी बेटी का सम्बंध मूलशंकर जैसे गुणी युवक व धनवान परिवार से हो। अंततः एक गुणी लड़की से विवाह तय हो गया, और इस अवसर पर हवन यज्ञ किया गया, पर जब विवाह के दिन निकट आए तो मूल ने और किसी तरह छुटकारा न देख, भाग जाने की ठानी, और वह एक दिन समय पाकर भाग खड़ा हुआ। मूलशंकर के भाग्य में तो विधाता ने शायद कुछ और ही होना लिखा था, उसके लिए गृहस्थी का संयोग तो था ही नहीं।

घर से निकलते ही उसके साथ धोखा हुआ। उसे वैरागियों की एक टोली मिली और कहने लगी कि देखो वैरागी बनने चला है, पर जेवरों और रेशमी वस्त्रों का मोह तो छूटता ही नहीं।

इन संन्यासियों ने उसके पास का सारा धन ठग लिया। उसकी सोने की अंगूठी भी ले ली। मूल्यवान वस्त्र भी छीन लिए और पुरानी केसरिया चादर उसे बदन ढकने के लिए दे दी और शरीर पर चंदन लगा दिया।

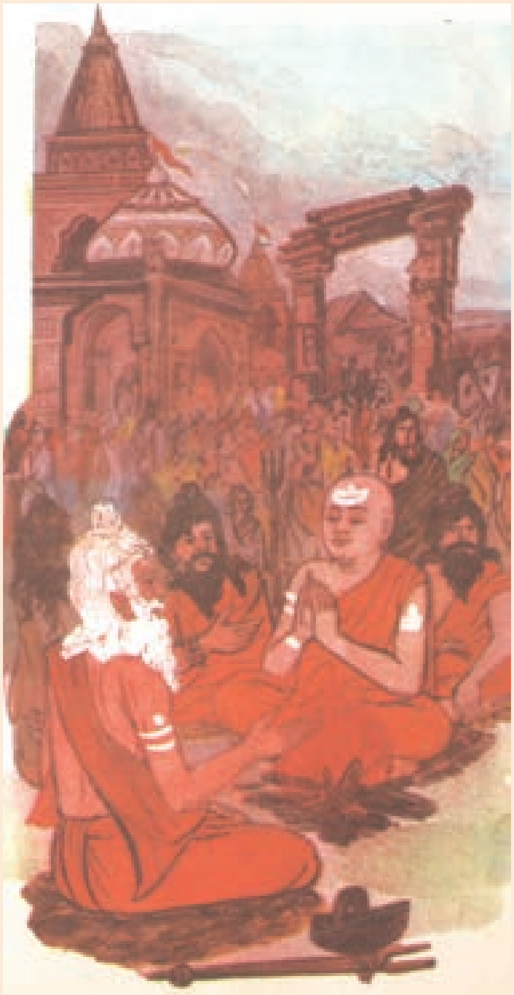

मूलशंकर ने एक पुराने मंदिर में जाकर एक लाला भक्त नामक योगी से पूछा, "बाबा, अमर कैसे हुआ जाता है?"

"अमर फल या अमृत खाकर।"

"वह कहां मिलेगा?"

"वह तो अब अब धरती पर नहीं है।"

"तो क्या दूसरा उपाय या विकल्प नहीं?"

"है तो सही।"

"क्या?"

"योग साधना।"

"क्या आप मुझे योग साधना करना सिखाएंगे?"

"योग साधना तुम जैसे साधारण व्यक्तियों के वश की बात नहीं।"

मूलशंकर ने जब आग्रह किया तो लाला भक्त ने उन्हें कुछ योग अभ्यास और संध्या हवन करना सिखाया।

यहां एक ब्रह्मचारी जो संन्यासी था उन्होंने मूलशंकर को आजीवन ब्रह्मचारी रहने की शिक्षा दी और उनका नाम शुद्ध चैतन्य रख दिया।

“मैं आखिर ईश्वर को क्यों नहीं पा सकता, अमर क्यों नहीं हो सकता?” शुद्ध चैतन्य ने एक संत से पूछा तो उन्होंने बताया, “यह तुझसे न होगा, क्योंकि यह तो बड़े-बड़े योगियों-संत-महात्माओं के वश की बात है।”

“वे योगी कहां मिलेंगे?”

“भयंकर जंगलों में या फिर हिमालय पर्वत की बर्फ से ढकी अज्ञात गुफाओं में।”

मूलशंकर योग अभ्यास करते और ईश्वर का ध्यान करते हुए अपने लक्ष्य की ओर बढ़ चले और भयंकर वनों और जंगलों एवं बर्फ से ढकी पर्वत श्रेणियों में ईश्वर की खोज करने लगे ताकि वे भगवान को पाकर अमर हो जाएं।

इधर एक जंगल से दूसरे जंगल...एक पर्वत से दूसरे पर्वत और एक नगर से दूसरे नगर में शुद्ध चैतन्य न जाने कितना लंबा सफर तय कर चुके थे, लेकिन अभी तक उसे ऐसा मंत्र मालूम न पड़ा था जिसके बल पर ईश्वर मिल जाते या योग का ऐसा अभ्यास वह खोज न पाया था, जो उसे ईश्वर के समक्ष लाकर खड़ा कर देता, वह तो बस भटक रहा था, उधर मूलशंकर के घर से भाग जाने से सभी लोग बड़े परेशान हुए। ज्यों-ज्यों समय गुजरता गया, मूलशंकर के न आने से घर वालों की चिंता त्यों-त्यों बढ़ती गई। जब वह घर नहीं आये तो घर में कोलाहल मच गया। करसन जी ने बहुत खोज कराई। लेकिन मूलशंकर का कोई कहीं कुछ पता न चला।

शुद्ध चैतन्य इतने पर भी निराश नहीं हुआ, क्योंकि वह जानता था कि परमात्मा न्यायकारी और निष्पक्ष है। वह कभी भी किसी के साथ कभी अन्याय नहीं करता और उसे इस संघर्ष से आगे बढ़ने की ही प्रेरणा मिलती है, इसलिए ईश्वर का ध्यान अवश्य ही करना चाहिए।

मूलशंकर के पिता की ओर से सब ओर सिपाही भेजे गये। अंत में एक महन्त के बताने पर मूलशंकर का पता लग गया और वे सिद्धपुर के मेले में हैं, ऐसा पता चला। एक वैरागी ने मूलशंकर के पिता को यह सूचना दी थी।

मूलशंकर के पिता की ओर से सब ओर सिपाही भेजे गये। अंत में एक वैरागी की सूचना पर मूलशंकर सिद्धपुर के मेले में पकड़े गये।

करसन जी पुत्र को, ब्रह्मचारियों जैसे पीत एवं लाल वस्त्रों में देख क्रोध से भर गया और उसके वस्त्रों को फाड़ते हुए उसे फटकार लगाने लगा। उसको सामान्य जन के समान वस्त्र पहना दिये गए। बालक चुपचाप यह सब सहन करता रहा। पिता ने क्रोध में उसे कहना शुरू किया, ''कुलघातक! मातृ-हन्ता! तुम बहुत बिगड़ गये हो। बताओ, क्यों भाग आये थे घर से? क्या किसी चीज की कमी थी घर में?''

मूलशंकर ने नम्रता और क्षमा-याचना के भाव में कह दिया, 'पिताजी! भूल हो गई है। किसी ने बरगला दिया था। अब ऐसी गलती नहीं होगी।''

''तो अब घर लौट चलोगे न?''

''जी...मैं तो स्वयं ही आने वाला था।''

करसन जी ने मूलशंकर को साथ लिया और अपने खेमे में सिपाहियों के पहरे में रख दिया। रात होने पर मूलशंकर लेट गया और वह सोने का बहाना करता रहा। सिपाही रात बहुत देर तक पहरा देते रहे। पर अंततः उन्हें झपकी आ गई तो मूलशंकर चुपके से उठा और समीप रखे लोटे को उठाकर शौच करने के बहाने वहां से चल पड़ा। कुछ देर तक तो वह बैठ-बैठकर गया और जब खेमे से ओझल हुआ तो भाग खड़ा हुआ। तीन मील के अन्तर पर एक मंदिर था। मंदिर के किनारे, एक घने पेड़ की डालियां, मंदिर की गुंबद पर छायी हुई थीं। उसने देखा कि यह स्थान छिपने के लिए अच्छा है। वह पेड़ पर चढ़ गया और गुंबद का आश्रय ले पेड़ के पत्तों में छिपकर बैठ गया। यह आश्रय किसी तपस्थली से कम न था। दिन-भर वह उस पेड़ पर छिपकर बैठा रहा। एक बार तो उसका अपना पिता और सिपाही उस मंदिर के समीप ढूंढते हुए दिखाई दिए। किसी को यह नहीं सूझा कि मूलशंकर बन्दर की भांति पेड़ की डाली के पत्तों में छिपा बैठा होगा! ऐसी तो कल्पना भी नहीं कर सकते थे। रात होने पर मूलशंकर पेड़ से उतरा और अहमदाबाद की ओर चल पड़ा। अहमदाबाद से वह बड़ौदा पहुंचा।

वह चेतन मठ के ब्रह्मचारियों और संन्यासियों की संगति में रहकर वेदान्त की शिक्षा ग्रहण करने लगा। कुछ काल बाद मृत्यु-विजय की खोज में वह वहां से चणोद, कर्णाली की ओर चल पड़ा। उसको सूचना मिली थी कि वहां बहुत साधु-सन्त आते-जाते रहते हैं, उनमें से वह किसी योगी की खोज में ही वहां गया था। वह योग से अमर बनना चाहता था। उसे इस की कोई चिंता न थी कि उसके घर से भागने पर गांव में उसके बारे में क्या चर्चा होती होगी।

कर्णाली में उन्होंने कई ब्रह्मचारियों, चिदानंद प्रभृति संन्यासियों और कई योग-दीक्षित साधु-महात्माओं के दर्शन किये। इससे पहले योग-दीक्षित साधुओं को उन्होंने कभी नहीं देखा था। कई दिन के शास्त्रालाप के बाद एक दिन वह परमात्मा परमहंस के पास गया और उनसे शिक्षा देने की प्रार्थना की। कुछ मास में ही उन्होंने वेदान्त-सार और वेदान्त परिभाषा के ग्रन्थों को पढ़ डाला और निरंतर योग अभ्यास और ईश्वर का ध्यान करते रहे।

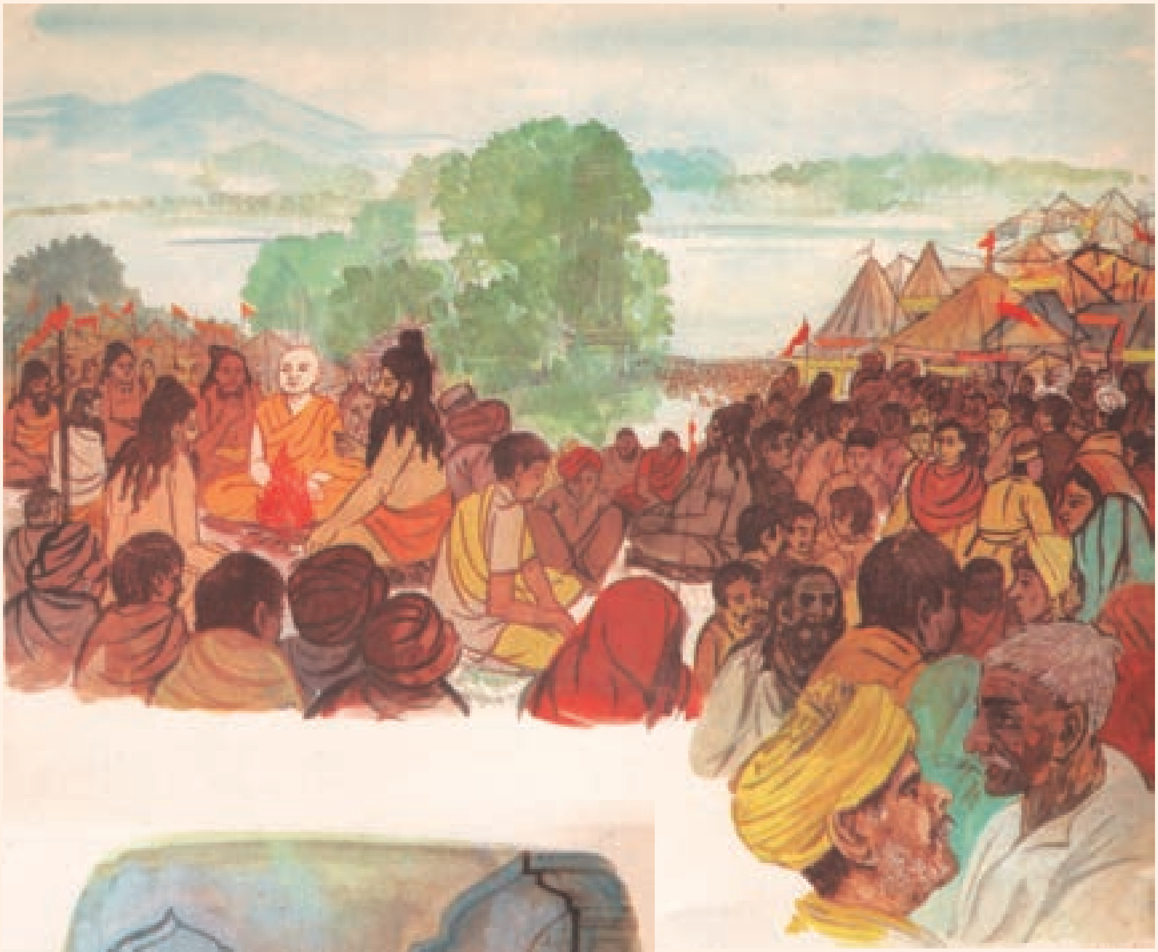

कर्णाली में ब्रह्मचारी शुद्ध चैतन्य ने संन्यासधर्म की दीक्षा ली। तब मूलशंकर का नाम दयानन्द सरस्वती हो गया। संन्यास की दीक्षा देने वाले एक दक्षिण संन्यासी स्वामी चिदाश्रम सरस्वती थे। ये योग-दीक्षित साधु थे और स्वामी दयानन्द ने इनसे बहुत-सी योग-क्रियाएं सीखीं, पर इन योग क्रियाओं से उन्हें संतुष्टि नहीं मिली, इसलिए वे सच्चे योगी की खोज में निकल पड़े।

एक दिन गंगा तट पर वे मंदिर के पास संध्या कर रहे थे कि दैवयोग से एक शव गंगा की धारा में बहता दिखाई दिया। उन दिनों दयानंद हठयोग के ग्रंथों का अध्ययन कर रहे थे। नाड़ी चक्र के विषय में उन्होंने इन ग्रंथों में बहुत कुछ पढ़ा था, उसके सत्यासत्य की परीक्षा के लिए यह अच्छा अवसर था। वे गंगा में उतर पड़े और तैर कर शव को किनारे पर लाए। तत्पश्चात तेज छुरी से उसकी चीरफाड़ करके ग्रंथों के वर्णन से उसका मिलान करने लगे।

जब स्वामी दयानंद ने देखा कि ग्रंथ का नाड़ी चक्र संबंधी वर्णन सही नहीं है, तब उन्होंने चीरे हुए उस शवदेह को वापस गंगा में फेंक दिया और साथ में उन पुस्तकों को भी गंगा में प्रवाहित कर दिया।

इस घटना ने उनके मन में मनुष्यकृत ग्रंथों के प्रति अनास्था की भूमिका तैयार की हो तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। इस घटना से उनकी सत्य के प्रति दृढ़ आस्था की भावना का परिचय भी मिलता है। इतना होने पर भी उन्होंने अपने लक्ष्य को छोड़ा नहीं, वरन आगे बढ़ते रहे।

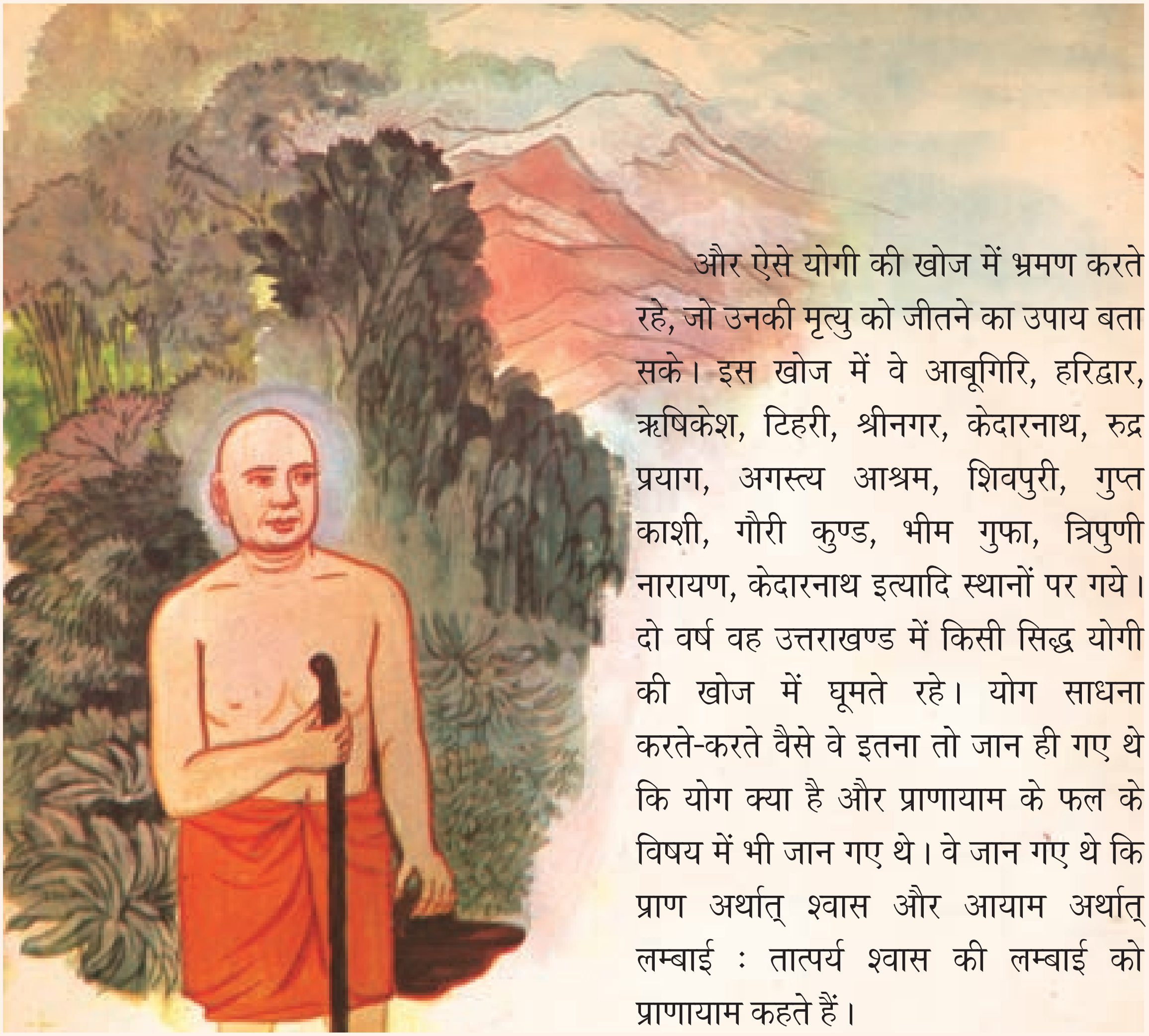

और ऐसे योगी की खोज में भ्रमण करते रहे, जो उनकी मृत्यु को जीतने का उपाय बता सके। इस खोज में वे आबूगिरि, हरिद्वार, ऋषिकेश, टिहरी, श्रीनगर, केदारनाथ, रुद्र प्रयाग, अगस्त्य आश्रम, शिवपुरी, गुप्त काशी, गौरी कुण्ड, भीम गुफा, त्रिपुणी नारायण, केदारनाथ इत्यादि स्थानों पर गये। दो वर्ष वह उत्तराखण्ड में किसी सिद्ध योगी की खोज में घूमते रहे। योग साधना करते-करते वैसे वे इतना तो जान ही गए थे कि योग क्या है और प्राणायाम के फल के विषय में भी जान गए थे। वे जान गए थे कि प्राण अर्थात् श्वास और आयाम अर्थात् लम्बाई : तात्पर्य श्वास की लम्बाई को प्राणायाम कहते हैं।

प्राणायाम का प्रयोजन यह है कि बहुत देर तक श्वास रोका जावे। बहुत समय तक प्राणायाम करने से चित्त एकाग्र हो जाता है, यह भली प्रकार समझ लेना चाहिए। स्वामी दयानंद प्राणायाम के लाभों को भी जान गए थे कि प्राणायाम का मुख्य लाभ यह है कि यदि योगशास्त्र के अनुकूल श्वास भीतर और बाहर छोड़े तो शरीर की नीरोगता की उन्नति होती है। नासिका और मुख बांधकर प्राणों की रुकावट करने से कुम्भक होता है, तो जो लोग फांसी पर चढ़ते हैं, उन्हीं को कुम्भक का ठीक साधक समझना चाहिए। यथार्थ स्वरूप कुम्भक का यह है कि वायु बाहर-की-बाहर रोक रखना। बाहर निकालने में विशेष उपाय करने से रेचक होता है। भीतर-के-भीतर प्राणों को रखने से पूरक होता है। यह प्राणायाम का विधान है। प्राणायाम का विधान तो वह जान गए, लेकिन ईश्वर का विधान अब तक न जान पाए थे।

दयानंद ने एक यति से पूछा, "ईश्वर मुझसे पक्षपात क्यों कर रहा है, मुझे दर्शन क्यों नहीं देता?" उस संन्यासी ने कहा, "परमात्मा कभी किसी के साथ पक्षपात नहीं करता और न ही पूजा पाठ से वह दुष्ट कार्यो के पाप को मिटाता है। जो जैसा करता है वैसा फल तो उसे भोगना ही पड़ेगा। हां परमात्मा की आराधना से बुरे कर्म करने से मुक्ति मिलती है। आराधना का यही सबसे बड़ा फल है और सुकर्म के मार्ग पर चलने वाले की परमात्मा कभी-कभी परीक्षा भी लेता है।"

"परीक्षा के कितने प्रकार हैं?"

"परीक्षा पांच प्रकार की है। इस में से जो प्रथम ईश्वर उस के गुण कर्म स्वभाव और वेदविद्य, दूसरी प्रत्यक्षादि आठ प्रमाण, तीसरी सृष्टिक्रम, चौथी आप्तों का व्यवहार और पांचवीं अपने आत्मा की पवित्रता विद्या, इन पांच परीक्षाओं से सत्याऽसत्य का निर्णय कर के सत्य का ग्रहण असत्य का परित्याग करना चाहिये।

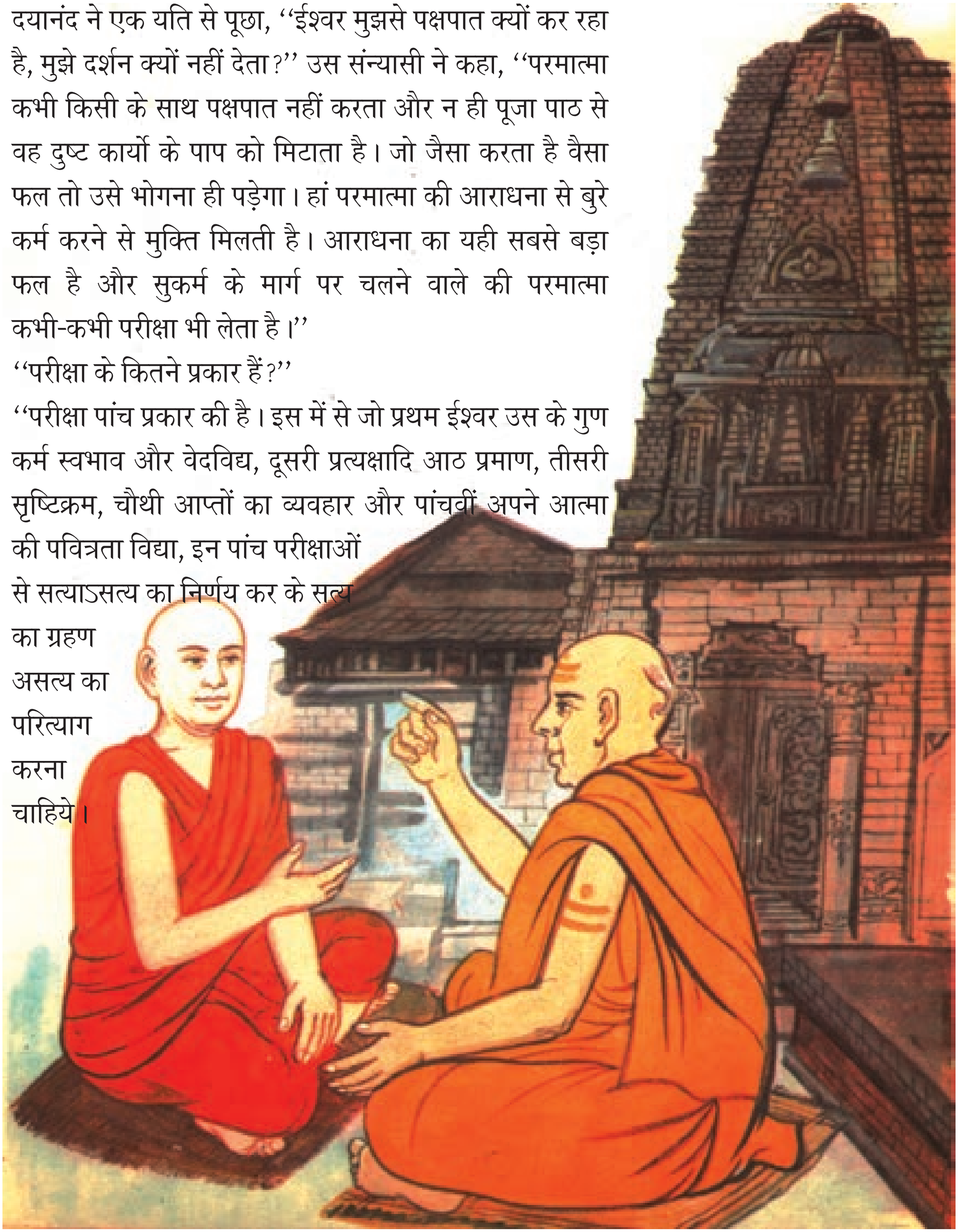

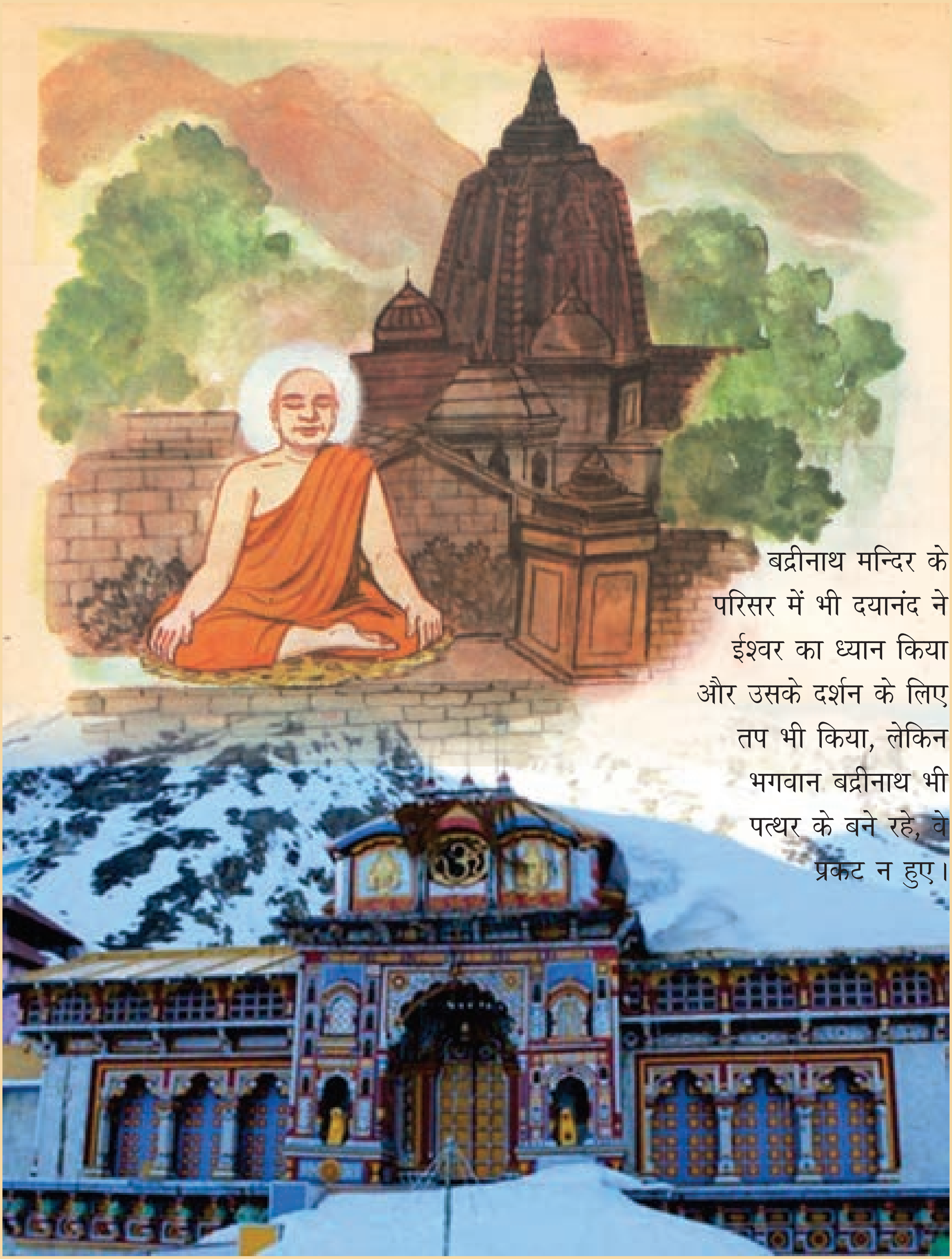

बद्रीनाथ मन्दिर के परिसर में भी दयानंद ने ईश्वर का ध्यान किया और उसके दर्शन के लिए तप भी किया, लेकिन भगवान बद्रीनाथ भी पत्थर के बने रहे, वे प्रकट न हुए।

एक दिन सूर्य निकलते ही दयानन्द बद्रीनाथ मन्दिर से निकले और पर्वत के नीचे-नीचे चलने लगे। अन्त में अलखनंदा के तट पर जा पहुंचे। नदी के पार बड़ामाना ग्राम दिखाई दिया। उस पार जाने की उनकी इच्छा नहीं थी। पहाड़ के नीचे-नीचे जाता हुआ मार्ग, उन्होंने पकड़ लिया। वह अलखनंदा के साथ-साथ चलते गये। रास्ते में उन्हें एक भयंकर भालू का सामना करना पड़ा। अंततः भालू को उन्होंने भगा दिया। पर्वत और मार्ग मोटे बर्फ से ढके हुए थे। अन्त में अलखनंदा के प्रसिद्ध उत्पत्ति स्थान पर वह पहुंचा। वहां पर उन्होंने देखा कि चारों ओर गगनभेदी पर्वतमाला खड़ी है। वह स्थान उनके लिए सर्वथा अपरिचित था। साथ ही चारों ओर से पर्वतों से घिरा हुआ भी।...कुछ देर तो इधर-उधर घूमते रहे। फिर नदी के दूसरी ओर जाकर मार्ग ढूंढने का विचार कर वह नदी में घुस गये। उस समय वह साधारण पतला कपड़ा पहने हुए थे। भूख और प्यास भी लग रही थी। उससे चित्त क्लान्त था। जल बर्फ के समान ठंडा था, कहीं गहरा था बर्फीले किनारों के बीच में यह दस हाथ चौड़ी नदी होगी। नदी तल पर बर्फ और पत्थर के टुकड़ों से उनके पांव क्षत-विक्षत हो रहे थे।

रक्त बहने लगा और उनके पांव सन्न हो गए थे। ऐसा अनुभव होने लगा कि एक बार जल में गिरा तो फिर उठ नहीं सकेंगे और बर्फ में जमकर प्राणान्त हो जायेगा। उनमें चलने की शक्ति नहीं थी। जीवन से निराश-सा हो रहे थे। तब उन्हें वहां दो मनुष्य आते दिखाई दिये, वे उनकी अवस्था देख और उनके भ्रमण का कारण जानकर उसे अपने घर तक चलने के लिए कहने लगे, लेकिन फिर उसे वहीं छोड़कर चले गए।

उन दिनों देश गुलामी की जंजीरों में जकड़ा हुआ था। एक तरफ तो भोली-भाली जनता को पंडे-पुजारी मूर्ख बनाकर ठग रहे थे, और दूसरी तरफ अंग्रेज उन पर तरह-तरह के कर लगाकर कहर ढा रहे थे। एक दिन स्वामी दयानन्द गंगा के किनारे बैठे थे, तो उन्होंने देखा कि एक औरत अपने मृत बच्चे को लेकर अंतिम क्रिया करने आई। महिला ने अपनी आधी साड़ी फाड़कर उसमें शव को लपेटा और फिर उसे गंगा मैया को समर्पित कर दिया। लेकिन फिर वह महिला गंगा में कूद पड़ी और उस बहते शव का वह कफन उतार लायी, जिसे उसने स्वयं ही डाला था। दयानन्द ने उसके पास जाकर पूछा, ''माता, जब कफन उतार लेना ही था, तो फिर डाला ही क्यों था।''

''महाराज! कफन बिना तो मुर्दे को मुक्ति नहीं मिलती।''

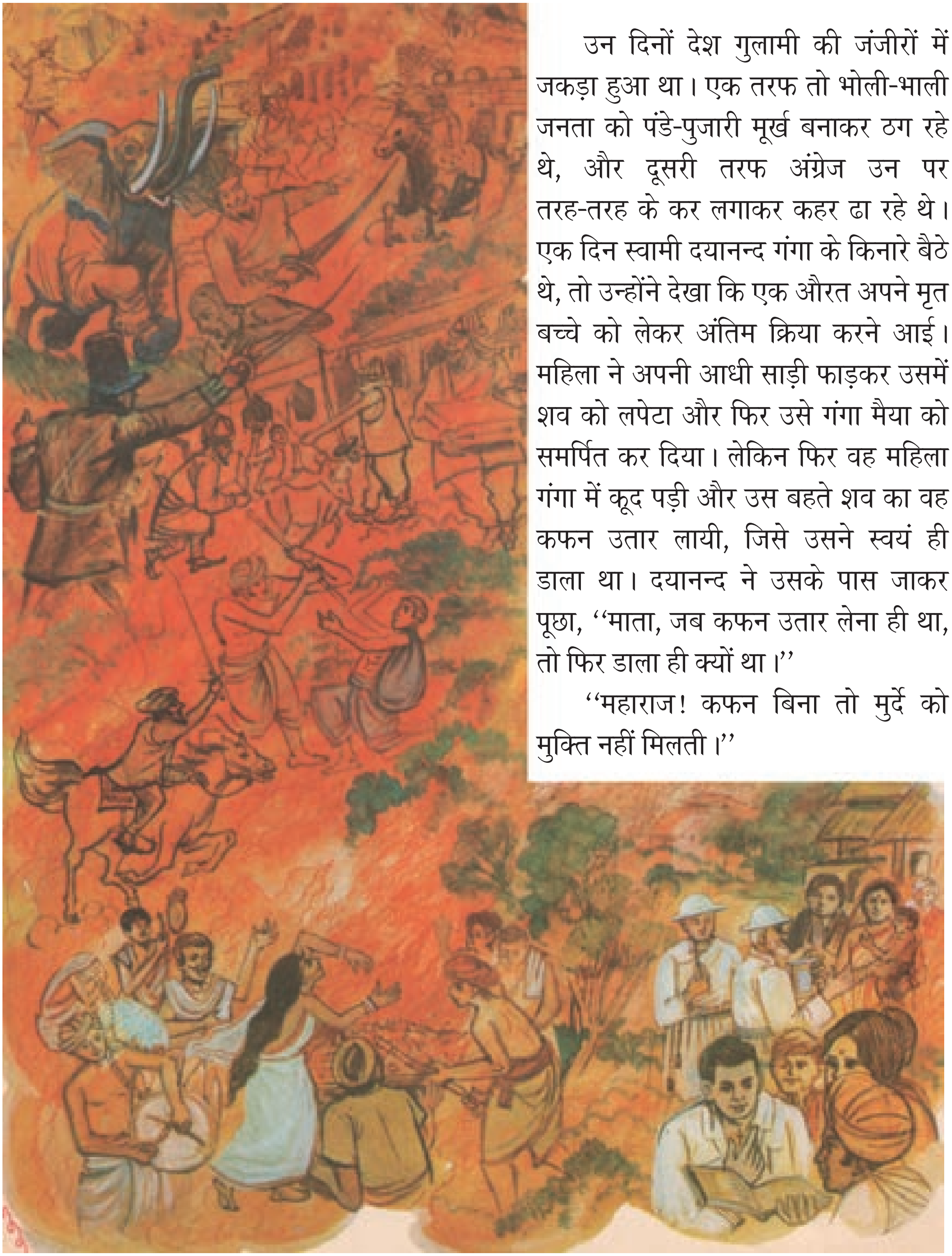

"तो फिर क्यों उतारा?"

"उतारा कहां? मैं तो गंगा मैया से मांग कर लाई हूं।"

"मगर क्यों?"

"ताकि इस साड़ी को दोबारा सीकर पहन सकूं।"

"हे भगवान!" दयानन्द की आंखों से अश्रुधारा बह चली, "कभी सोने की चिड़िया कहलाने वाले आज मेरे देश की यह हालत हो गई कि मासूम बच्चे के शव को दो अंगुल कफन भी नहीं मिलता!"

उन्होंने अब अपना उत्थान छोड़कर देश के गरीब लोगों के उत्थान के विषय में सोचना शुरू कर दिया।

परन्तु गरीब लोगों का उत्थान बिना भारत देश की स्वतंत्रता के संभव नहीं था। एक मंदिर में उनकी बलि देने की चेष्टा भी की गई, लेकिन दयानंद दुष्टों का सामना करते हुए वहां से सकुशल आगे प्रस्थान कर गए थे।

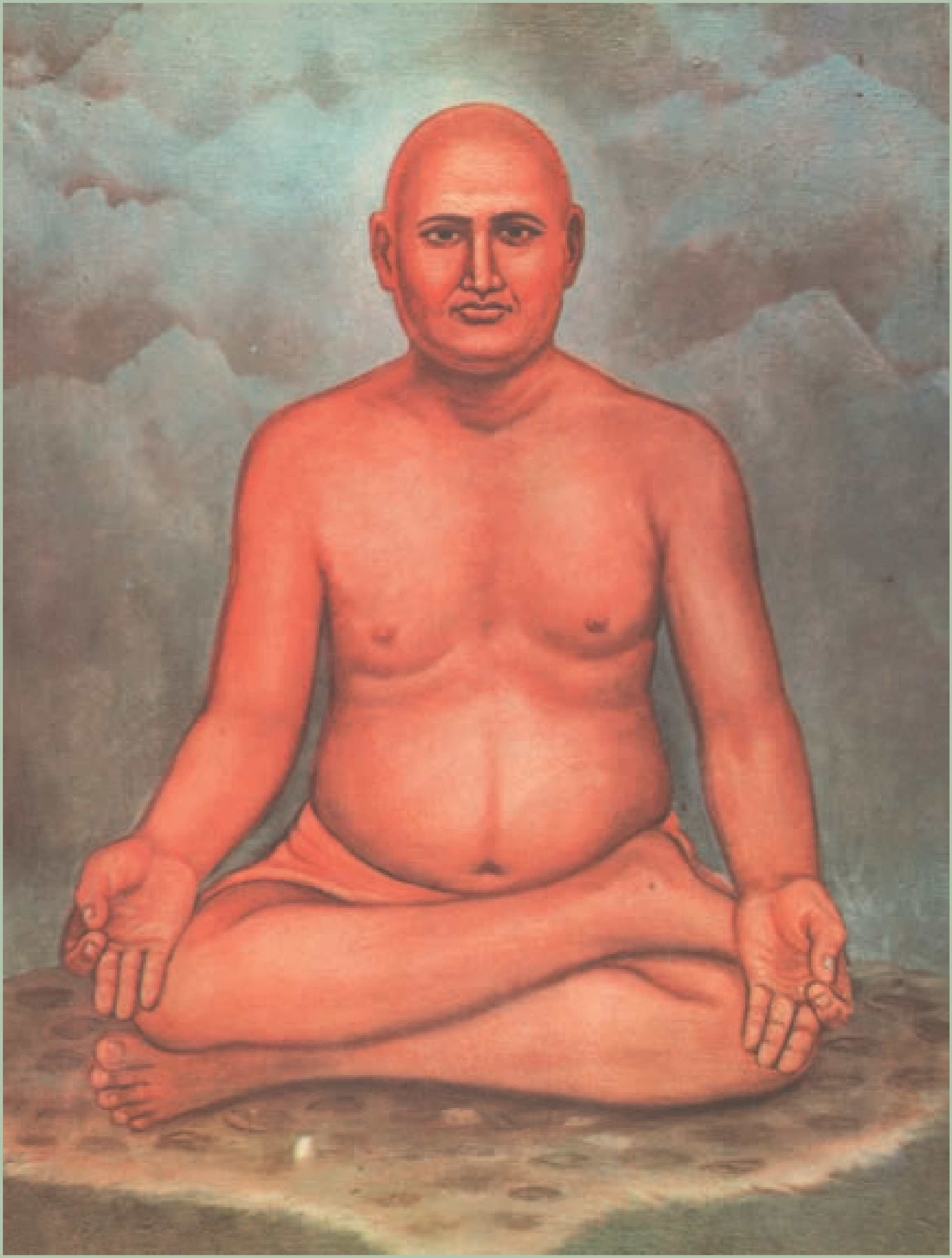

पंडे पुजारियों के अंधविश्वास और विदेशियों द्वारा देश की आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक दुर्दशा और अंग्रेज़ों के अत्याचारों का दिग्दर्शन करके दयानन्द स्वामी व्यथित हो उठे। महारानी झांसी, नाना साहब आदि अनेक गणमान्य व्यक्तियों के अधिकारों का हनन किया गया। राजा-महाराजाओं ने अंग्रेजों के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाई। पर अंग्रेज़ों से मुक़ाबला करना साधारण राज्य सत्ता की शक्ति से बाहर की बात थी। इसलिए वे अंग्रेजों को उखाड़ फेंकने के लिए सारे देश में क्रान्ति की ज्वाला एक साथ जलाना चाहते थे। नाना साहब ने इस कार्य के लिए साधु-संन्यासियों द्वारा देश में धर्मप्रचार के सहारे क्रान्ति पैदा करने की महत् योजना बनाई। इसके लिए उन्होंने तीर्थयात्रा का आयोजन किया। जहां उन्हें किसी भी क्रान्तिकारी विचार रखनेवाले देशभक्त साधु-संन्यासी का पता लगता, वे वहीं पहुंच जाते। उन दिनों कनखल (हरिद्वार) में वयोवृद्ध स्वामी सम्पूर्णानन्द जी देशभक्ति लिए प्रसिद्ध थे। नाना साहब उनके पास गए और देश को आज़ादी दिलाने के कार्य में मार्गदर्शन और सहयोग देने की प्रार्थना की, ''महात्मन, देश को आपके मार्गदर्शन की जरूरत है।''

''किसलिए?''

''आज़ादी के लिए।''

''ओह, मैं भी आज़ाद भारत में ही चिरनिद्रामय समाधि लगाना चाहता हूं, लेकिन आयु अधिक होने से मैं अब देशसेवा नहीं कर सकता।''

इस प्रकार 'स्वामी सम्पूर्णानन्द जी ने 108 वर्ष की अवस्था हो जाने के कारण स्वयं सक्रिय सहयोग देने में असमर्थता प्रकट की।

''पर मार्गदर्शन तो कर सकते हैं।'' इस पर उन्होंने नाना साहब को कहा, ''इस कार्य में दयानन्द सरस्वती नाम के तेजस्वी युवा संन्यासी आपको अच्छा सहयोग दे सकते हैं। उनके मन में भी देश-भक्ति की भावना कूट-कूटकर भरी है। वह मुझे हरिद्वार के कुम्भ के मेले के समय मिले थे। और कुछ समय पूर्व द्रोणासर से लौटने पर मेरे पास आए थे।''

''कहां मिलेंगे दयानन्द सरस्वती?''

''वे मेरे पास आते रहते हैं; अब की बार वे आएंगे तो मैं आपसे मिलने की बात उनसे करूंगा।''

महर्षि दयानन्द गंगोत्री, बद्रीनाथ, गढ़वाल, रुहेलखंड, दोआब होकर पुनः जब स्वामी सम्पूर्णानन्द जी के पास कनखल पहुंचे तो उन्होंने नाना साहब की बात उन्हें सुनाईं। स्वामी दयानन्द को प्रसन्नता हुई। वे मई, 1856 में नाना साहब से बिठूर में मिलने गए। दोनों नेताओं ने अंग्रेज़ों को देश में से निकालने के लिए योजना बनाई :

''साधु-संन्यासियों द्वारा देशी सैनिकों में अंग्रेजों द्वारा कारतूसों पर लगाई जा रही 'गौ' और 'सूअर' की चर्बी का उल्लेख करके उनकी धार्मिक भावनाओं को उभारकर अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ विद्रोह पैदा किया जाए।'' संन्यासियों द्वारा गुप्त रूप से कमल पुष्प व रोटियों में गुप्त सन्देशों को भेजने की योजना बनाई गई। महर्षि दयानन्द के नेतृत्व में तमाम सैनिक प्रतिष्ठानों में साधुओं के वेश में क्रान्ति की ज्वाला भड़काई जाने लगी। महर्षि दयानन्द को इस कार्य के लिए दक्षिण में रामेश्वरम् तक, बंगाल में गंगासागर तक, उत्तर में गंगोत्री तक की पैदल यात्रा करनी पड़ी।

नाना साहब, महारानी लक्ष्मीबाई, तात्यां टोपे, अजीमउल्ला खां आदि नेताओं ने निश्चित तिथि को एक साथ सारे देश में विस्फोट करने की योजना बनाई। दुर्भाग्यवश योजना से पूर्व ही मेरठ और रुड़की के सैनिक प्रतिष्ठानों में क्रान्ति की ज्वाला फूट पड़ी। कुछ विलासी और स्वार्थी राजाओं ने सहयोग भी नहीं दिया। अंग्रेज़ों ने देशभक्त सैनिकों एवं प्रजाजनों को अमानवीय ढंग से कुचल दिया। महारानी झांसी लक्ष्मीबाई युद्ध में बलिदान हो गईं। तात्यां टोपे भी शहीद हो गए। नाना साहब तथा अजीमउल्ला खां को महर्षि दयानन्द ने कहा, ''सौराष्ट्र की तरफ़ चले जाओ, वहां अंग्रेज़ों का विशेष प्रभाव नहीं है। देशी राज्यों के कुछ राजे-महाराजे देशभक्त हैं; उनके सहयोग से शायद कुछ कार्य हो सके।''

''भगवन् आपकी जो आज्ञा। पर...''

''पर क्या?''

''मेरी इच्छा आर्य राष्ट्र नेपाल से होकर अफगानिस्तान जाने की है।''

''आपकी उचित इच्छा है, अच्छा आप नेपाल ही चले जाएं।''

''धन्यवाद भगवन्!''

इस प्रकार नाना साहब अपने साथियों के साथ नेपाल चले गए। वहां अपने व्यक्तियों द्वारा एक स्थान पर आग लगवाकर यह प्रसिद्ध कर दिया कि नाना साहब मर गए। पुलिस तथा गुप्तचर विभाग के व्यक्तियों से पीछा छुड़ाने के लिए यह योजना बनाई गयी। अंग्रेज़ अधिकारियों को विश्वास हो गया कि नाना साहब अब इस दुनिया में नहीं रहे। नाना साहब यहां एक साधु के रूप में नेपाल से अफगानिस्तान गए। वहां एक सिन्धी व्यापारी, जो काजू, किशमिश, अखरोट आदि सूखे मेवे का कार्य करते थे, उनके साथ सिन्ध के शिकारपुर में उनके पास पहुंचे। सिन्धियों की साधु-सन्तों के प्रति बड़ी श्रद्धा होती है। प्रतिभाशाली विशालकाय इस संन्यासी को उस व्यापारी ने बड़ी श्रद्धा से कुछ दिन अपने पास रखा। कुछ दिन वहां रहकर थारपारकर बदीन के मार्ग से होकर नाना साहब साधु के वेश में कच्छ के प्रसिद्ध नारायण सरोवर तीर्थस्थान होकर मोरबी पहुंच गए। 'मोरबी नरेश स्वाभिमानी देशभक्त हैं', यह उन्होंने महर्षि दयानन्द से सुन रखा था। मोरबी के नगर-सेठ को जब यह पता लगा कि शहर में एक विद्वान और प्रतिभाशाली साधु आया है, तब वे उसको अपने घर ले गए, ''भगवान! आपके आने से मेरी कुटी पवित्र हो गई।''

''वह तो ठीक है, भिक्षा क्या दोगे?''

''मतलब!'' भक्त सकपकाया।

''भक्त, चिंता मत करो, मेरी भिक्षा यही है कि गरीबों की हमेशा मदद करते रहो।''

और फिर नाना साहब कुछ समय वहां रहकर भावनगर के पास शिहोर नामक स्थान पर अपने साथी अजीमउल्ला खां को मिलने गए, वह पहले ही फ़कीर के वेश में वहां पहुंच गए थे। नाना साहब भी शहर शिहोर से एक मील की दूरी पर एक रमणीय स्थान पर, जहां झरने बहते थे, 'दयानन्द योगी' के नाम से कुटिया बनाकर रहने लगे। दोनों क्रान्तिकारी प्रायः रात्रि को आपस में मिलते थे। शिहोर के पास ही सोनगढ़ में अंग्रेज़ों का सैनिक प्रतिष्ठान था। अंग्रेज़ों को दयानन्द योगी पर कुछ सन्देह-सा होने लगा। इसकी जानकारी नाना साहब को अजीमउल्ला खां द्वारा मिली। नाना साहब वहां से आंख बचाकर मोरबी नगरसेठ के यहां पहुंच गए। वहां काफ़ी समय रहे। अवस्था और प्रवासों ने शरीर को जीर्ण-शीर्ण बना दिया था। मृत्यु सिर पर सवार हो गई। मरने से पूर्व उन्होंने मोरबी नरेश सरवाघजी ठाकुर को अपने पास बुलाकर अपनी गुप्ती देते हुए कहा, ''मेरे मरने पर इस गुप्ती को खोलना। मेरी मृत्यु पर दाह संस्कार करना तथा अपने राज्य का विकास करना।''

अंततः एक दिन साधु के वेश में नाना साहब की मृत्यु हो गई। सरवाघजी ठाकुर ने जब गुप्ती खोली तो उसमें से अमूल्य हीरे और जवाहरात निकले। नाना की शानदार श्मशान-यात्रा निकाली गई। उनका दाह-संस्कार किया गया, वहां एक समाधि बनाई गई। मोरबी रेलवे-स्टेशन के पीछे, वहां इस समय आश्रम भी बन गया है। आगे चलकर मोरबी नरेश सरवाघजी ठाकुर ने गुप्ती के धन से मोरबी

का योजनापूर्वक सुन्दर निर्माण किया। रेलवे लाइन डलवाकर ट्रेन की व्यवस्था भी की।

सन्' 57 की क्रान्ति में असफलता मिलने पर महर्षि दयानन्द हताश और निराश हो गए। उनके एक शिष्य ने पूछा, ''भगवन! देश में क्रान्ति असफल होने के क्या कारण हैं?''

''देश में एक विचारधारा, एक जाति, एक संगठन, एक भाषा, एक राष्ट्र का नितांत अभाव है, इसी कारण देश स्वतंत्र नहीं हो सका।''

''तो देश स्वतंत्र कब होगा?''

''करीब सौ वर्ष बाद, क्योंकि राष्ट्रीय एकता के विकास में इतना समय तो लग ही जाएगा।''

''तो आप अब क्या करेंगे?''

''स्वामी सम्पूर्णानंद की सेवा... ।''

और इस प्रकार उन्होंने अपना मार्ग बदल दिया।

सामाजिक कुरीतियों, कुप्रथाओं की समस्याओं के समाधान की जानकारी लेने के लिए महर्षि दयानन्द, स्वामी सम्पूर्णानन्द की सेवा में गए।

''भगवान, देश को पराधीनता व सामाजिक कुरीतियों ने खोखला कर दिया है, इस समस्या का समाधान आखिर कैसे सम्भव है?''

''पुत्र, इसका समाधान आखिर कैसे सम्भव नहीं।''

''तो फिर?''

''इस समस्या के समाधान के लिए पहले भारतीयों को जानना होगा कि वे कौन हैं, क्योंकि भारतीय अपना प्राचीन गौरवशाली इतिहास भूल चुके हैं, और जो अपना इतिहास भूल जाता है, वह जाति ही विश्व के नक्शे से स्वतः मिट जाती है।''

“तो फिर भारतीयों को अपना गौरवशाली इतिहास कैसे याद दिलाया जा सकता है?”

“इसके लिए कठोर तपस्या व आर्ष ज्ञान की जरूरत है।”

“वह कहां मिलेगा?”

“क्या तुम सचमुच नये भारत का निर्माण करना चाहते हो?”

“जी भगवान!”

“तो फिर मथुरा में मेरे शिष्य स्वामी विरजानंद के पास चले जाओ, वे ही तुम्हारे कल्याण का मार्ग प्रशस्त करेंगे।”

“धन्यवाद भगवान!”

इस प्रकार स्वामी दयानन्द ने मथुरा की ओर अपने क्रांतिकारी कदम बढ़ाए। उस दिन अमावश की घोर अंधेर रात्रि थी। रात के बारह बज चुके थे। ऐसे घोर अंधकार में सारा संसार सोया पड़ा था। लेकिन एक जिज्ञासु मथुरा की गलियों में स्वामी विरजानंद की कुटिया तलाशता फिर रहा था।

आखिरकार रात्रि में पहरा दे रहे नगर रक्षकों से स्वामी दयानन्द ने स्वामी विरजानंद की कुटिया का पता पूछ जैसे ही बाहर से दरवाजा खटखटाया, तो अंदर से आवाज आयी, “कौन?”

“यदि यह पता होता, मैं कौन हूं, तो आपका दरवाजा ही क्यों खटखटाता?”

जिज्ञासु दयानन्द ने उत्तर दिया।

''आह! लगता है तुम कोई सत्य के अन्वेषक और आर्ष ज्ञान के प्यासे हो।'' कहकर विरजानंद ने कुटिया का दरवाजा खोल दिया।

स्वामी दयानन्द ने दरवाजा खोलने वाले प्रज्ञाचक्षु के चरण स्पर्श करते हुए कहा, ''मुझे अपने चरणों में स्थान दें गुरुवर।''

''आपका स्थान चरणों में नहीं, मेरे हृदय में है।'' विरजानंद ने उसे हृदय से लगाते हुए कहा।

दयानंद अब गुरु चरणों में बैठकर अध्ययन करने लगे। गुरु जी की कुटी में झाड़ू स्वामी दयानन्द ही दिया करते थे। एक दिन झाड़ू देकर कूड़ा एक ओर रख, बाहर फेंकने के लिए टोकरी देख रहे थे कि विरजानन्द की टांग कूड़े पर जा पड़ी। गुरु जी क्रोध में आ गए और उन्होंने दयानन्द की खूब पिटाई की। दयानन्द कुछ समय पीछे गुरु के हाथ-पैर दबाने जा बैठे और नम्रता से कहने लगे, ''गुरुवर! मेरा शरीर तो तपस्या से पत्थर हो गया। उसे आपकी मार जैसे लगी ही नहीं। हां! आपका शरीर अवश्य दुखता होगा, इसलिए आपके हाथ-पैर दबाने आया हूं।''

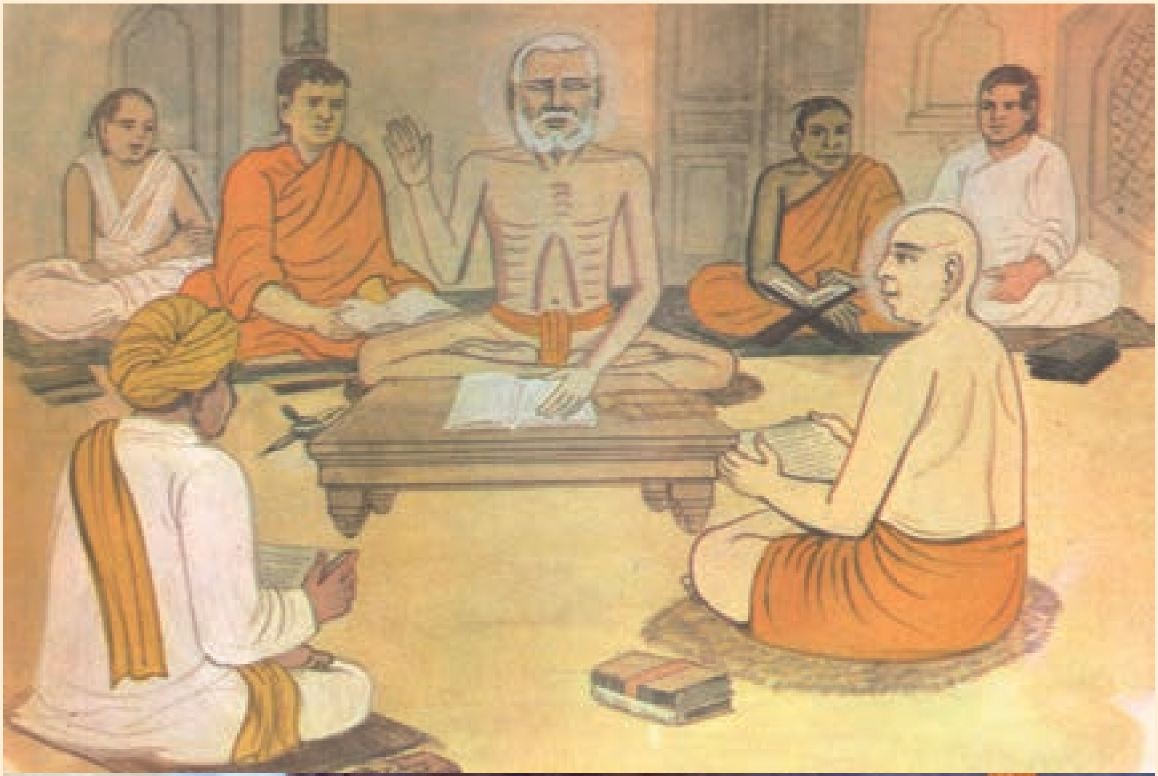

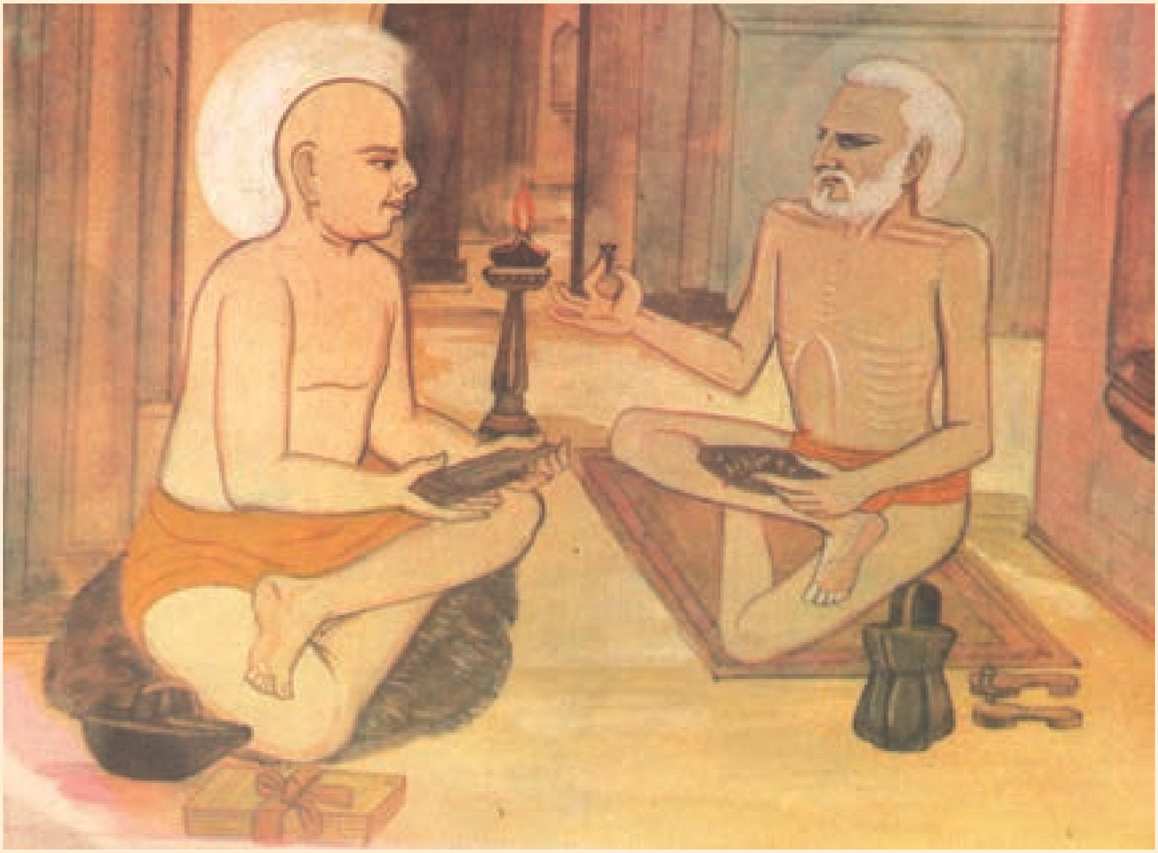

इस प्रकार गुरु की सेवा-सुश्रूषा करते हुए स्वामी दयानन्द ने लगभग 3 वर्षों में समस्त आर्ष ग्रंथों का पठन पाठन कर डाला।

विद्या समाप्त होने पर एक दिन समावर्तन के लिए नियत किया गया। सबने बारी-बारी से गुरु को दक्षिणा दी और उनसे उज्ज्वल भविष्य की कामना का आशीर्वाद लिया। जब दयानन्द की बारी आयी तो वे कुछ लौंग गुरु श्री के चरणों में रखकर बोले, ''भगवन! लौंग छोटी चीज़ है, पर और कुछ मिला ही नहीं, कृपया स्वीकार करें!''

''बेटा, मुझे तुमसे गुरु दक्षिणा में कुछ और ही चाहिए।''

''आज्ञा करें गुरुवर!''

''तुम्हें गुरु दक्षिणा में प्रतिज्ञा करनी होगी।''

''कहिए गुरुवर, क्या प्रतिज्ञा करनी होगी?''

''संसार वेदों को भूल गया है, इसलिए 'वेदों की ओर लौटो' का संदेश घर-घर पहुंचा दो।''

''जो आज्ञा गुरुवर। मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि यह दक्षिणा आपको अवश्य दूंगा।''

दयानन्द ने गुरुदेव से विदा लेते हुए उत्तर भारत में प्रचार कार्य आरम्भ कर दिया, परन्तु परमात्मा के उन दयालु मनुष्यों की परम्परा के विपरीत जो अपने श्रोताओं के नेत्रों के समक्ष स्वर्ग के लुभावने दृश्य उपस्थित करते रहते हैं, गीता के वीर नायक इलियड के हरक्यूलिस जैसे महान् वीर दयानन्द ने अपने एकमात्र सत्य विचार के अतिरिक्त अन्य सभी प्रकार के वेद-विरुद्ध विचारों को चुनौती दी। वे अपने काम में इतने सफल हुए कि 5 वर्ष के अल्प काल में ही उत्तर भारत की काया पलट हो गई, पर उनके आन्दोलन से धर्म के ठेकेदारों में हलचल मच गई, इसलिए चारों ओर उनके शत्रु बांस के जंगल की तरह उग गये। इसका परिणाम यह हुआ कि धर्म प्रचार के शुरुआती 5 वर्षों में 4 या 5 बार विष द्वारा उनके प्राण लेने की चेष्टा की गई।

स्वामी दयानन्द पर विजय करना असंभव था, क्योंकि वे वैदिक वाङ्मय और संस्कृत के अनुपम भण्डार थे, और उनके ज्ञान की बराबरी कोई न कर पाता था। उनके शब्दों की धधकती हुई आग से उनके विरोधियों का विरोध भस्मसात् हो जाया करता था। वे लोग दयानन्द की तुलना जल की बाढ़ के साथ किया करते थे। शंकराचार्य के बाद दयानन्द जैसा वेदविज्ञ भारत भूमि में उत्पन्न नहीं हुआ। एक दिन दयानंद एक नगर में अपना प्रवचन करके सड़क पर निकले तो देखा कि सड़क पर दो सांड आपस में लड़ रहे हैं। दयानंद ने दोनों सांडों के सींग पकड़े और उन्हें अलग कर दिया। दयानंद की शक्ति को देखकर लोग आश्चर्यचकित हुए और उन्होंने जब इसे चमत्कार माना तो दयानंद ने चमत्कार के अंधविश्वास का खंडन करते हुए लोगों से कहा, "ब्रह्मचर्य में अद्‌भुत शक्ति है, लेकिन खेद है जब से लोगों ने ब्रह्मचर्य का त्याग किया है, तभी से देश पराधीन हो गया है।" उन्होंने आगे कहा, "सब वर्णों के अध्ययन का समय ब्रह्मचर्य है, और संसार को एक ओर रखकर अध्ययन, उपदेश और लोक-कल्याण करने में जो सम्पूर्ण समय लगाया जावे यह संन्यास है। ब्रह्मचर्य में अतुल बल होता है। न केवल शारीरिक बल वरन इससे नैतिक शिक्षा का भी प्रचार-प्रसार होता है और एक स्वस्थ समाज बनता है। इसलिए यह आश्रम बड़ा ही महान है।

एक दिन सुखवासी लाल साधु महर्षि के लिए कढ़ी और भात बनाकर लाए और उन्होंने उसे खाया। इस पर ब्राह्मणों ने कहा कि आप भ्रष्ट हो गए, जो साधु के घर का भोजन खा लिया। महर्षि ने उत्तर दिया कि भोजन दो प्रकार से भ्रष्ट होता है, एक तो यदि किसी को दुख देकर धन प्राप्त किया जाए और उससे अन्न आदि क्रय करके भोजन बनाया जाए। दूसरे, भोजन मलिन हो या उसमें कोई वस्तु गिर जाए। साधु लोगों का परिश्रम का पैसा है। उनसे प्राप्त किया हुआ भोजन उत्तम है।

इस पर एक सज्जन ने कहा, ''स्वामी जी, सबकी आत्मा तो एक ही है, फिर सबके हाथ का भोजन भी एक सा ही होना चाहिए।''

स्वामी जी ने कहा, ''मित्रों को एक दूसरे के साथ अपनी आत्मा और प्राणों के समान बर्ताव करना चाहिए। अपने पड़ोसियों को अपनी देह के तुल्य जानना चाहिए। मालिक नौकर के साथ ऐसा बर्ताव करे, जैसा वह अपने अंगों के साथ करता है। ऐसा बर्ताव करने वाले के हाथ का अन्न पवित्र होता है।''

महर्षि दयानन्द के उपदेशों की धूम ऐसी मची कि राजा और रंक सब उनके उपदेश सुनने आते थे। उनके प्रवचनों के दौरान जात-पात का भेदभाव भूलकर लोग एक साथ बैठे रहते थे। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि राष्ट्रीय एकता के सूत्रधार दयानन्द स्वामी ही थे। नवभारत के स्वप्न दृष्टा के रूप में महर्षि दयानन्द ने एक शताब्दी पूर्व ही एक ऐसे भव्य भारत का चित्र खींचा था, जो लोकतांत्रिक होने के साथ-साथ समाज में फैली विभिन्न कुरीतियों से मुक्त हो। स्वामी जी एक ऐसे भारत की स्थापना करना चाहते थे जहां प्रेम, सहयोग तथा बंधुत्व का साम्राज्य हो और जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को अपने गुणों के अनुरूप कार्य करने की स्वतंत्रता हो। वह भारत की यश पताका को विश्व भर में फहरा देना चाहते थे।

स्वामी दयानन्द ने शास्त्रार्थ के बल पर देशभर में फैले पाखण्ड को जड़ से उखाड़ फेंकने का सूत्रपात किया, तो तब शास्त्रार्थ में पराजित हुए पौराणिकों ने दयानन्द को काशी में आने के लिए आमन्त्रित किया। दयानन्द निर्भयतापूर्वक वहां गये, और 1861 के नवम्बर मास में उस महान् शास्त्रार्थ में प्रवृत्त हुए जिसकी तुलना होमर के काव्य में वर्णित संग्राम के साथ की जा सकती है। लाखों आक्रान्ताओं के सामने जो उन्हें परास्त करने के लिए उत्सुक थे, उन्होंने अकेले 300 पण्डितों के साथ शास्त्रार्थ किया। दयानन्द ने अपना आधार वेद को बनाया हुआ था। वेदों के आगे पण्डितों का धीरज टूटते हुए देर न लगी। महाभारत जैसे इस संघर्ष की प्रतिध्वनि से समस्त भारत गूंज उठा, जिसका परिणाम यह हुआ कि भारतवर्ष में उनका नाम प्रसिद्ध हो गया।

कई समाचार पत्रों में शास्त्रार्थ का आंखों देखा हाल प्रकाशित होने लगा। धनी लोग भी पालकियों में बैठकर उनका शास्त्रार्थ देखने आए। उस दिन तो शास्त्रार्थ में हद ही हो गई। पंडित सत्य को असत्य से दबाना चाहते थे। पर क्या सत्य कभी दबाया जा सकता है? काशी नरेश की अध्यक्षता में यह शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ। 50 हजार श्रोताओं की भारी-भरकम भीड़ शास्त्रार्थ को ध्यान से सुन रही थी। उस दिन सबसे पहले पंडित ताराचन्द ने स्वामी जी से पूछा ''आप किन ग्रंथों को आर्यों के धर्मग्रंथ मान्य मानते हैं?''

''ईश्वर वाणी परम पावन वेदों को।'' स्वामी ने प्रत्युत्तर पूछा, ''क्या आप भी वेदों को मानते हैं?''

''हां मैं वेदों को प्रामाणिक मानता हूं।''

''वेद में यदि मूर्ति-पूजा का विधान हो तो, प्रमाण पेश करो।''

''वेद के अतिरिक्त अन्य ग्रंथ भी तो प्रमाण हैं?''

''पहले वेद की बात का निश्चय हो जाए, बाद में अन्य ग्रन्थों के विषय में बात कर लेंगे। मुख्य प्रमाण वेद हैं। अन्य ग्रन्थ गौण हैं। इस कारण यदि वेद में इस विषय में कुछ नहीं तो मूर्तिपूजा नहीं करनी चाहिए।''

अब स्वामी विशुद्धानन्द ने आगे आकर कहा, ''रचना की अनुपत्ति असिद्धि होने से अनुमान द्वारा वर्णित प्रधान जगत् का कारण नहीं है। व्यास के इस सूत्र को वेद-मूलक सिद्ध कीजिये।''

''यह बात उपस्थित वाद के साथ सम्बन्ध नहीं रखती।''

''तो क्या हुआ? यदि आपको इसका समाधान आता है, तो बताइये।'' उन्होंने कहा, ''यूं ही पंडित बने फिरते थे?''

''इसका मूल पाठ देखकर ही समाधान किया जा सकता है।''

''यदि सब कुछ स्मरण नहीं तो काशी में शास्त्रार्थ करने के लिये आये ही क्यों हैं? शास्त्रार्थ कोई

मजाक है क्या?''

''क्या आपको सब कुछ स्मरण है?''

''हां, हमको सब कुछ स्मरण है।''

''तो बताइये, धर्म के कितने लक्षण हैं?''

''वेद में कहे फल सहित कर्म ही धर्म है।''

''यह तो आपका कथन है, कोई शास्त्रीय प्रमाण दीजिये।''

''धर्म का लक्षण प्रेरणा कहा गया है।''

''यह भी ठीक, परन्तु प्रेरणा कहते हैं श्रुति स्मृति की आज्ञा को। श्रुति स्मृति की आज्ञा में धर्म के लक्षण बताइये।''

''धर्म का एक ही लक्षण है।''

''शास्त्र में धर्म के दस लक्षण बताये हैं।''

''कहां ऐसा लिखा है?''

''घृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचिन्द्रिनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्॥''

विशुद्धानन्द मौन हो गये।

तब बाला शास्त्री कहने लगे, ''धर्म शास्त्र का अध्ययन मैंने किया है। इस विषय में हमसे पूछिये।''

स्वामी जी ने कहा, ''आप अधर्म के लक्षण बताइये।''

बाला शास्त्री भी चुप हो गये।

इस पर सब पण्डित चिल्लाने लगे, ''वेद में प्रतिमा शब्द है या नहीं?''

स्वामी जी ने कहा, ''वेद में प्रतिमा शब्द तो है, परन्तु वह पूजा के सम्बन्ध में नहीं है।''

''तो किस प्रकरण में है?''

''प्रतिमा शब्द यजुर्वेद के 32वें अध्याय के तीसरे मन्त्र में है। यह सामवेद के ब्राह्मण में भी है। परन्तु यहां पाषाणादि के पूजन का द्योतक नहीं। इसलिए मैं इसका खण्डन करता हूं।''

इस पर स्वामी जी ने मन्त्र की विस्तार से व्याख्या कर दी।

तब इधर-उधर के प्रश्न होने लगे। अब फिर विशुद्धानन्द ने पूछ लिया, ''वेद कैसे उत्पन्न हुए?''

''सृष्टि के आरम्भ में वेद का प्रकाश ईश्वर ने किया।''

''किस ईश्वर ने किया?''

''क्या आप अनेक ईश्वर मानते हैं?''

“ईश्वर तो एक ही है, परन्तु वेद के प्रकाशक ईश्वर के लक्षण बताइये।”

“उसका लक्षण सच्चिदानन्द है।”

“कार्य कारण का।”

“जैसे मन में और सूर्यादि में ब्रह्म बुद्धि करके उपासना कही है, वैसे शालिग्राम आदि में ईश्वरभावना करके पूजन में क्या हानि है?”

इस समय मध्याचार्य जी बोल पड़े, “उद्बुध्यस्वाग्ने मूर्ते। इसे मूर्ति का आयोजन क्यों नहीं लेते?”

“मूर्त पूर्ति का वाचक है, मूर्ति का नहीं।”

इस प्रकार चार घंटे तक वार्तालाप चलता रहा। सब पण्डित बारी-बारी से निरुत्तर हो गये। अनेक विषयों पर वार्तालाप हुआ। पण्डित वर्ग कोई प्रमाण मूर्ति पूजा के पक्ष में नहीं दे सका। इस पर स्वामी जी से वंचना खेली गई। एक पण्डित, वामनाचार्य, किसी पुस्तक के दो पुराने पन्ने जो अत्यन्त अस्पष्ट लिखे हुए थे, निकाल कर ले आये और कहने लगे कि ये वेद के पृष्ठ हैं। इनमें लिखा है : यज्ञ समाप्तौ सत्यां दशमें दिवसे पुराण-पाठं शृणुयात् अर्थात् यज्ञ समाप्ति के दसवें दिन पुराणों का श्रवण करें।”

स्वामी जी ने कहा, “पढ़ कर सुनाइये।”

विशुद्धानन्द ने पन्ने वामनाचार्य से लेकर स्वामी जी की ओर कर दिये और कहा, “आप ही पढ़ लीजिये।”

स्वामी जी ने कहा, “आप ही पढ़िये।” इस पर विशुद्धानन्द कहने लगा, “मैं चश्में के बिना नहीं पढ़ सकता। आप ही पढ़िये।”

स्वामी जी ने पन्ने ले लिये और पढ़ने का यत्न करने लगे। लिखावट अत्यन्त अस्पष्ट थी और अंधेरा हो गया था। इस कारण स्वामी जी को पढ़ने में कुछ समय लगा। अभी दो मिनट से अधिक समय नहीं हुआ था कि सभी लोग “दयानन्द पराजित” की घोषणा करते हुए उठ खड़े हुए। पर समाचार पत्रों में दयानन्द को विजयी घोषित किया गया। बाद में कई लोगों ने दयानंद को अपने घर आमंत्रित किया, जिनमें मुस्लिम, हिन्दू और ईसाई समुदाय के लोग शामिल थे और स्वामी दयानंद से अपनी शंकाओं का समाधान किया।

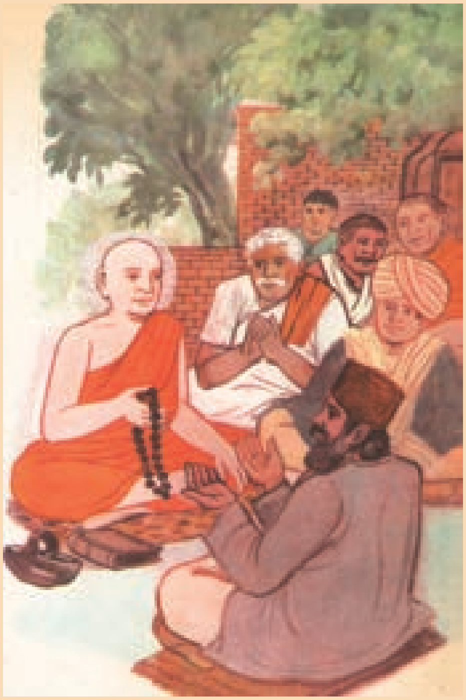

अमृतसर में एक बाल पाठशाला के अध्यापक ने एक दिन अपने छात्रों से कहा, ''आज महर्षि दयानन्द की कथा में चलेंगे। तुम अपनी झोलियों में ईंट, रोड़े और कंकर भरकर मेरे साथ चलना और जब मैं संकेत करूं तो तुम कथा कहनेवाले पर ईंट, रोड़े और कंकर फेंक देना। मैं तुम्हें लड्डू दूंगा।'' अबोध बालकों ने अपनी झोलियां भर लीं और दयानंद पर बालकों ने कंकड़ व रोड़े बरसाने शुरू कर दिए। इस पर दयानंद ने कहा, ''आज मुझ पर पत्थर बरसा रहे हैं, कल यही लोग फूल बरसाएंगे।''

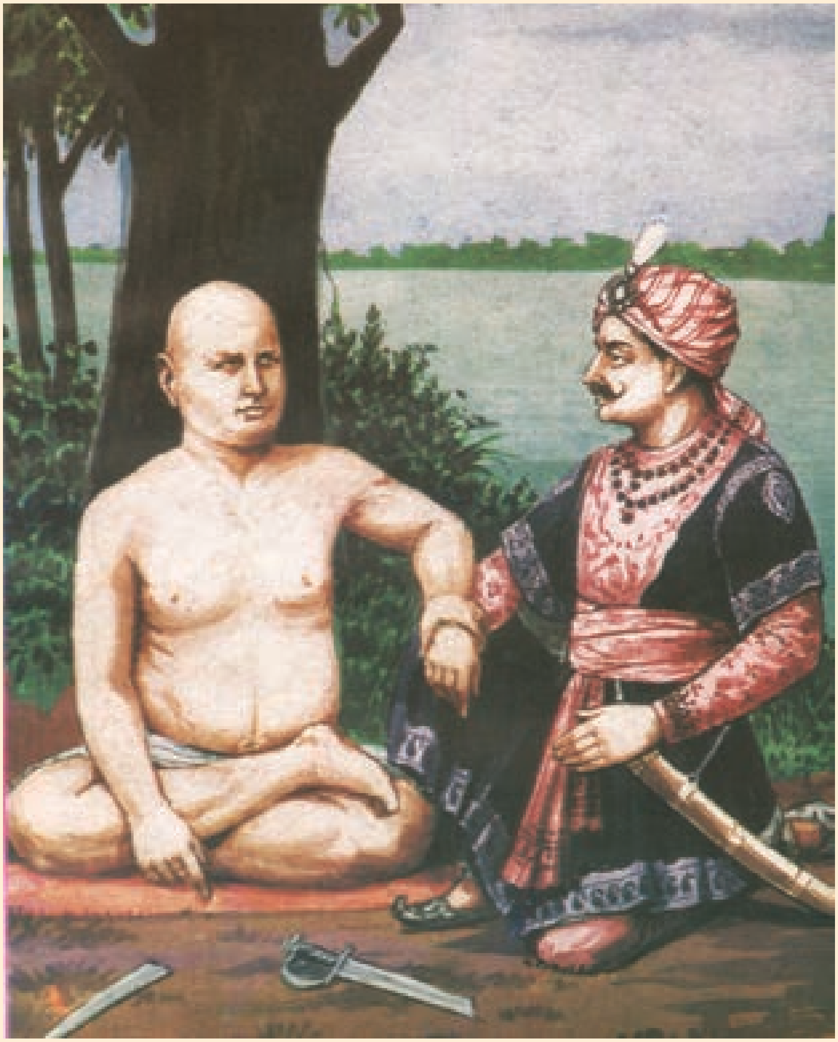

धर्म प्रचार करते हुए स्वामी दयानन्द सरस्वती कर्णवास पहुंचे तो तब उस पौराणिक नगरी में खलबली मच गई। स्वामी दयानन्द ने एक सुन्दर स्थान पर अपना आसन लगाया। लोग उनके दर्शन करने एवं प्रवचन सुनने आने लगे। पास ही बरेली गांव था। वहां के ठाकुर कर्णसिंह को जब स्वामी जी द्वारा मूर्ति-पूजा खंडन का समाचार मिला तो वे बेहद बौखला गये और दयानन्द को मारने के लिए उन्होंने तलवार से प्रहार करना चाहा, इस पर दयानंद ने उनकी तलवार छीनकर तोड़ डाली और बोले, ''साधुओ से नहीं अंग्रेजों से लड़ो और देश को स्वाधीन कराओ।''

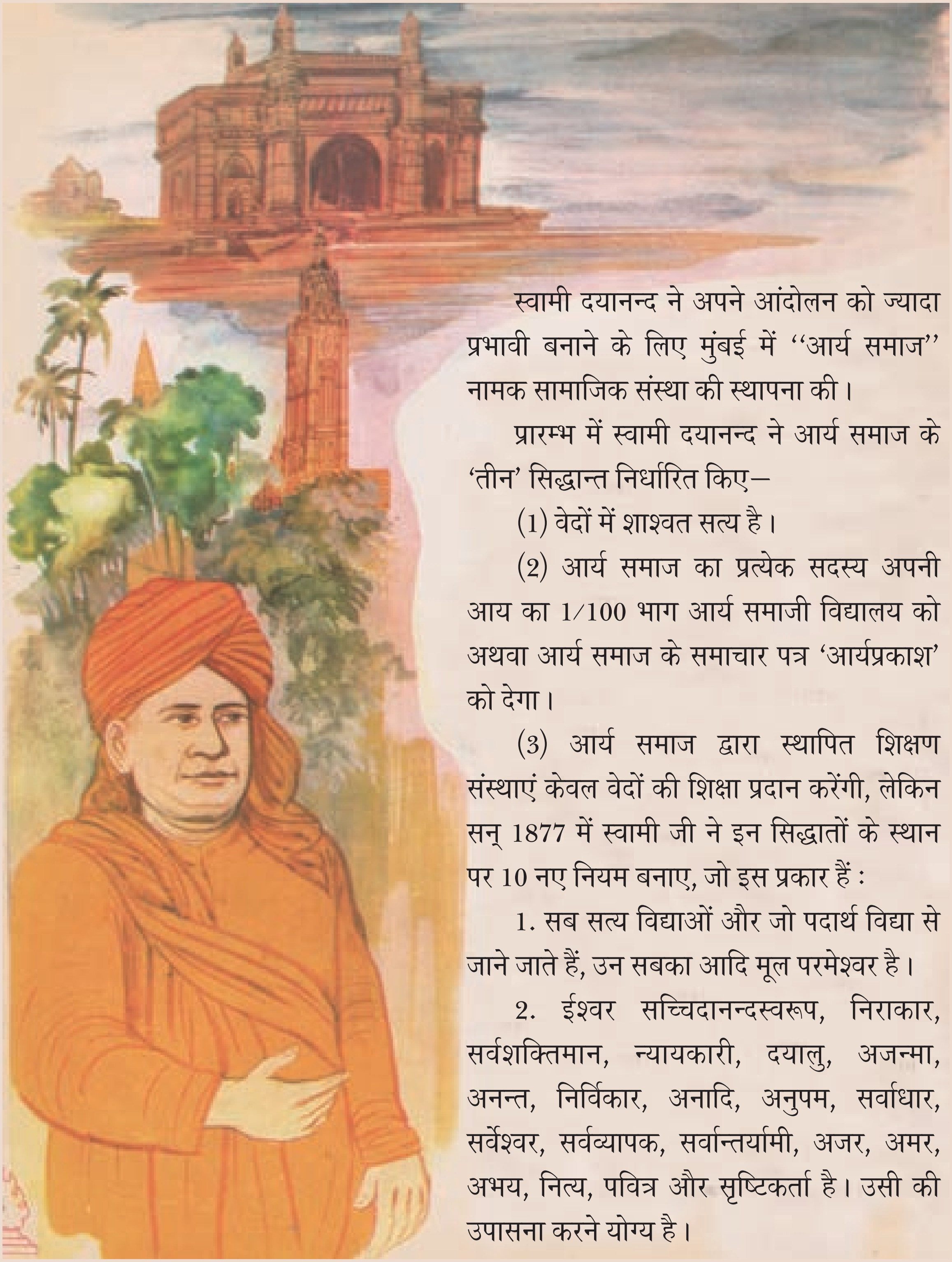

स्वामी दयानन्द ने अपने आंदोलन को ज्यादा प्रभावी बनाने के लिए मुंबई में ''आर्य समाज'' नामक सामाजिक संस्था की स्थापना की।

प्रारम्भ में स्वामी दयानन्द ने आर्य समाज के 'तीन' सिद्धान्त निर्धारित किए—

(1) वेदों में शाश्वत सत्य है।

(2) आर्य समाज का प्रत्येक सदस्य अपनी आय का 1/100 भाग आर्य समाजी विद्यालय को अथवा आर्य समाज के समाचार पत्र 'आर्यप्रकाश' को देगा।

(3) आर्य समाज द्वारा स्थापित शिक्षण संस्थाएं केवल वेदों की शिक्षा प्रदान करेंगी, लेकिन सन् 1877 में स्वामी जी ने इन सिद्धातों के स्थान पर 10 नए नियम बनाए, जो इस प्रकार हैं :

1. सब सत्य विद्याओं और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।

2. ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है। उसी की उपासना करने योग्य है।

3. वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

4. सत्य को ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

5. सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य का विचार करके करने चाहिए।

6. संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

7. सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य बरताव करना चाहिए।

8. अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।

9. प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिए, बल्कि सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

10. सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

आर्य समाज के नियम किसी जाति या धर्म से संबंधित नहीं हैं, वरन ये मानव मात्र के कल्याण के लिए हैं। इन नियमों का स्थान विश्व में बड़ा ही उच्च माना गया है और गैर आर्य समाजी भी इन नियमों के अनुसार अनेक जन कल्याण के कार्य करते हैं। आर्य समाज का मुख्य कार्य समाज सेवा करना ही है, क्योंकि इससे ही जगत का कल्याण संभव है।

पटना में भाषण के दौरान उनके ऊपर किसी विरोधी ने विषधर फेंक दिया। विषधर को पकड़कर दूर फेंकते हुए दयानन्द बोले, "आज विषधर फेंक रहे हैं, कल फूलों की माला भी यही लोग फेंकेंगे।"

और ऐसा ही हुआ। जब दयानन्द ने सैकड़ों ईसाई बने लोगों को पुनः हिन्दू बनाया तो पूरे शहर में हाथी पर बैठाकर दयानन्द की शोभायात्रा निकाली गयी। इससे अंग्रेज़ सरकार तिलमिला उठी। और कुछ प्रतिनिधियों को उन्हें समझाने के लिए भेजा, लेकिन तर्क-वितर्क के बाद वे दयानंद के ही प्रशंसक बन गए।

इसके बाद दयानन्द अनूप शहर पहुंचे। यहां एक विरोधी ने पान में विष देकर मारने का षड्यंत्र रचा। दयानन्द ने न्योली क्रिया द्वारा विष निकाल दिया, लेकिन यह घटना पूरे शहर में जंगल की आग की तरह फैल गई। यहां के तहसीलदार सर सय्यद अहमद दयानन्द के परम भक्त बन गये थे, जब उन्हें इस घटना का पता चला तो, उन्होंने अपराधी को गिरफ्तार कर लिया और उसे स्वामी दयानन्द के सामने उपस्थित किया, "भगवन! आपका अपराधी आपके सामने है, आप कहें तो इसे आपको मारने की चेष्टा में मृत्यु-दंड दिलवा दिया जाए?"

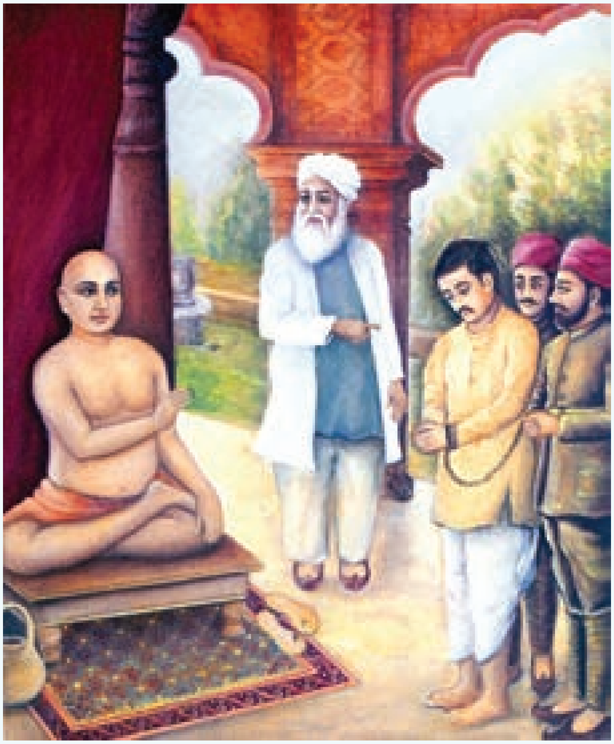

"इसे छोड़ दो," दयानन्द बोले, "मैं संसार को कैद कराने नहीं, कैद से मुक्त कराने आया हूं।"

स्वामी दयानंद जब दूसरी बार काशी गए, तब पुनः पंडितों को शास्त्रार्थ के लिए ललकारा। परंतु इस बार किसी का साहस न हुआ कि दयानंद से शास्त्रार्थ करे, तब दयानंद ने नगर में अपने व्याख्यान करने शुरू किए, परंतु पंडितों और मौलवियों ने कोर्ट का सहारा लेकर दयानंद का प्रवचन रूकवा दिया। मजिस्ट्रेट ने घुड़सवार सार्जेंट भेजकर स्वामी जी के व्याख्यान पर प्रतिबंध लगा दिया। लेकिन अगले दिन मजिस्ट्रेट को पत्र लिखकर दयानंद ने अपने प्रवचन पर प्रतिबंध का कारण पूछा और साथ ही लेफ्टिनेंट गवर्नर और चीफ कमिश्नर को भी पत्र लिखा, तब जाकर उनके भाषण से प्रतिबंध हटाया गया।

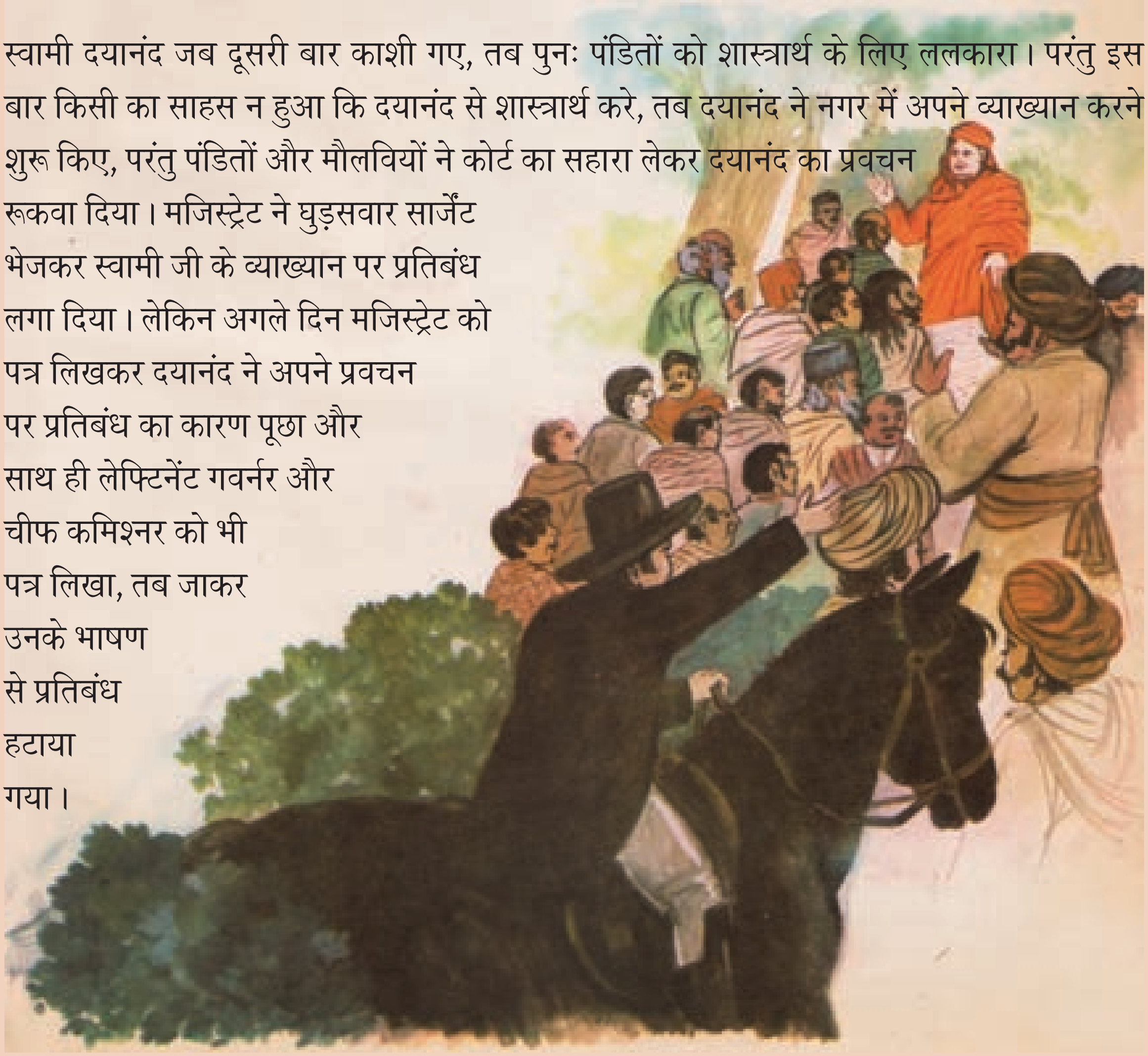

और स्वामी दयानंद ने अगले दिन व्याख्यान देते हुए कहा, ‘‘जिस पुरुष को यह अभिमान होता है कि मैं धनाढ्य हूं, या मैं बड़ा राजा हूं उसे अविद्या का दोष है। दूसरा शरीर का क्षीण रहना, यह अविद्या के कारण ही होता है। इससे सब प्रकार की विद्या सम्पादन करने के विषय में प्रयत्न करते रहना चाहिए। हमारे देश में न्यून अवस्था में विवाह करने की रीति के कारण विद्या-सम्पादन करने में अड़चन होती है। अपवित्र पदार्थ में पवित्रता मानना यह अविद्या है। ईश्वर का ध्यान, यह पूर्ण विद्या है। यह सारी विद्याओं का मूल है। किसी भी देश में इस विद्या का ह्रास (न्यूनता) होने से उस देश को दुर्दशा आ घेरते हैं। हम सर्वज्ञ नहीं, और सब बातें हममें उपस्थित भी नहीं। दोष बतलाने पर हम स्वीकार करेंगे। हमारे बोलने में अनन्त दोष होते होंगे। इस विषय में हमें अभिमान नहीं है।

स्वामी दयानन्द जहां पुराणों के दोष दिखाते थे, वहां इंजील तथा कुरान का भी खण्डन करते थे। अमृतसर में उन्होंने ईसाई मत के दोष दिखाए तो पादरियों ने खड्गसिंह को बुलाया कि स्वामी जी के आक्षेपों का जवाब दे। खड्गसिंह बारह वर्ष से ईसाई हो चुका था और ईसाई मत का प्रसिद्ध प्रचारक था। अमृतसर आते ही खड्गसिंह सीधा स्वामीजी के स्थान पर पहुंचा और झट आर्य हो गया, ''दयानन्द से मैं कैसे भिड़ सकता हूं, यह तो मसीहा हैं।'' वह ईसाइयों से फिर मिला ही नहीं। पादरी मुंह ताकते रहे।

जालंधर में सरदार विक्रमसिंह ने स्वामी जी से कहा, ''सुना है, ब्रह्मचारी बहुत बलवान् होता है।''

''हां, शास्त्रों में भी लिखा है और बात भी ठीक है।''

''इसका प्रमाण?''

स्वामी जी चुप रहे।

लेकिन जब सरदार बग्घी पर चढ़कर जाने लगे। साईस ने अपना सारा जोर लगा लिया, पर घोड़े आगे को हिलते ही न थे। पीछे देखा तो स्वामी जी ने पहिया पकड़ रखा था।

स्वामी जी ने बग्घी छोड़ दी और कहा, ''लीजिए, ब्रह्मचर्य का प्रमाण!'' सरदार नीचे उतरकर स्वामी जी के चरणों में गिर पड़ा।

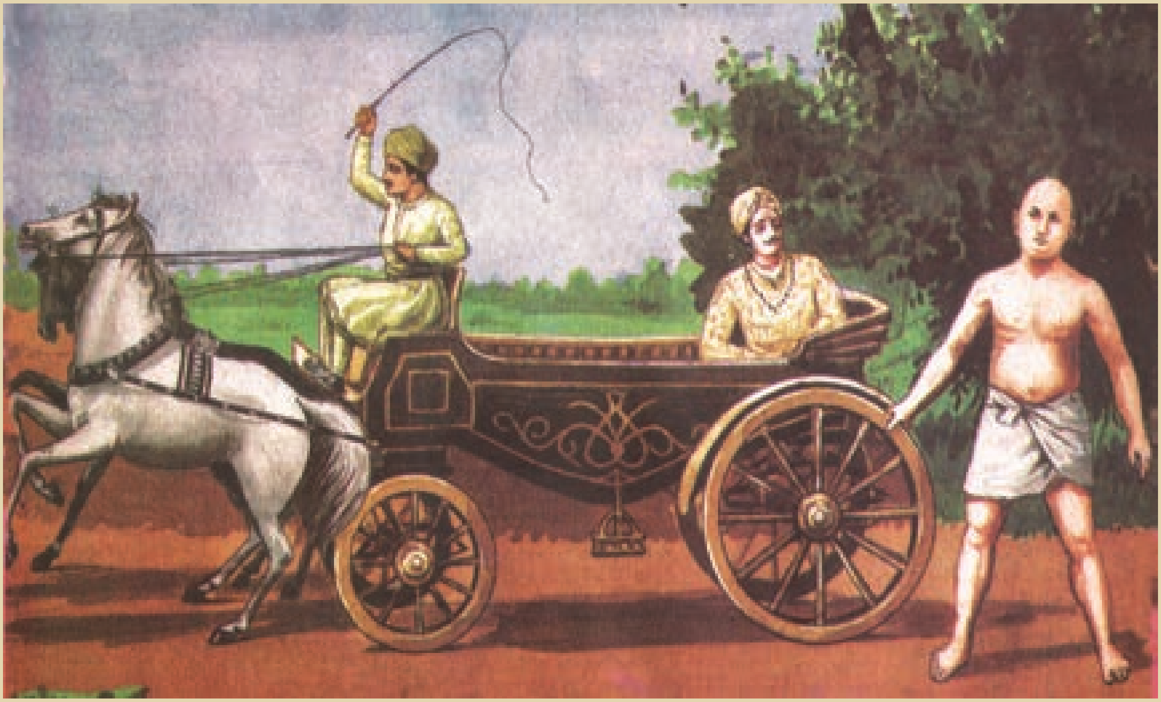

कई सज्जनों ने चांदपुर ग्राम में मेला किया और मुसलमानों, ईसाइयों और वैदिक-धर्मियों को बुलाया कि आपस में धर्म-विचार करें। मुसलमानों की ओर से मौलाना मुहम्मद कासिम, ईसाइयों की ओर से पादरी नोबल और वैदिक-धर्मियों की ओर से स्वामीजी ने संवाद किया। तीनों के हस्ताक्षरों से वहां का सारा संवाद छप गया। उसे पढ़ने से पता लगता है कि वैदिक सिद्धान्तों के आगे किसी और मत की नहीं चल सकती।

संवाद में सबने वैदिक धर्म को ही सबसे महान धर्म स्वीकारा।

इसके बाद स्वामी जी धर्म प्रचार करते हुए प्रयाग पहुंचे। प्रयाग में महर्षि के पास नाना प्रकार के तिलकधारी लोग बैठे थे और महर्षि उन्हें कह रहे थे, "मस्तक का शृंगार करने की अपेक्षा ईश्वरोपसना द्वारा आत्म-शृंगार किया करो। ऐसा तिलक लगाने से तुम्हारा क्या प्रयोजन है? आडम्बर रचना महात्माओं का काम नहीं है। शोक, महाशोक, तिलक आदि चिन्ह बनाने में लोगों की रूचि है, तथा योगाभ्यास में नहीं। मूर्खो! जितने समय में तुम यह तिलक लगाते रहे, इतने समय में गायत्री क्यों न जप लो!"

फिर उन्होंने प्राचीन आर्यो के बारे में कहा, "प्राचीन आर्य लोग बड़े ही बुद्धिमान् थे, इसमें किञ्चित् भी सन्देह नहीं है। प्राचीनकाल के आर्य लोग अभेद्यवीर्य थे और स्त्रियों में भी पूर्ण वय होने के कारण वीर्याकर्षता रहती थी।"

कलकत्ता स्थित लार्ड बिशप चर्च ऑफ इंग्लैण्ड, स्वामी जी को लेकर वायसराय लार्ड नार्थब्रुक के पास गये। वार्तालाप द्विभाषिये के द्वारा हुआ। नार्थब्रुक ने गोसेवा से संबद्ध अनेक प्रश्नों के उत्तर भी पाये। स्वामी दयानंद सरस्वती ने आगरा में गोकरुणानिधि नामक अमूल्य पुस्तक लिखी, जिसमें गोधन के महत्व पर युक्तियुक्त ढंग से प्रकाश डाला गया है। स्वामी जी गोरक्षा को देश की उन्नति का मूल मानते थे, इसलिए उन्होंने कई जगह गोकृष्यादि रक्षिणी सभाएं स्थापित की। राजपूताने के पोलिटिकल एजेंट से व पश्चिमोत्तर प्रांत के लेफ्टिनेंट गवर्नर से मिलकर गोहत्या पर प्रतिबंध का अनुरोध किया और तीन करोड़ लोगों से इसके समर्थन में हस्ताक्षर कराकर उन्हें महारानी विक्टोरिया को भेजा।

ब्रह्म, धर्म, अध्यात्म और योग पर ऐसी जागरुकता फैली कि जगह-जगह तर्क-वितक होने लगे और

इन कार्यशालाओं में स्वामी दयानंद को भी बुलाया जाने लगा। निस्संदेह पूरी दुनिया में नवजागरण हो रहा था और इसका पूरा श्रेय स्वामी दयानंद सरस्वती को ही जाता है, जिन्होंने दुनिया को रहने लायक बनाने का बीड़ा उठाया और सोते हुए भारत को जगाया।

स्वामी जी रतलाम, जावरा, चित्तौड़ और निम्बाहेडी होते हुए उदयपुर में पहुंचे, जहां उनका स्वागत उदयपुर नरेश ने किया और नवलखा बाग, जो उस समय सज्जन निवास कहलाता था, में स्वामी जी के ठहरने की व्यवस्था की गई।

स्वामी दयानंद सरस्वती जी ने महाराणा से कहकर दशहरे के अवसर पर पशुओं की बलि प्रथा पर रोक लगवा दी और इससे पशुओं का बहुत कल्याण हुआ। यह एक महान कार्य था।

स्वामी जी अपने प्रचार अभियान के तहत फर्रुखाबाद गए। वहां लाला जगन्नाथ ने महर्षि दयानन्द से पूछा, ''कृपा करके बतलाइए कि मनुष्य का क्या कर्तव्य है?''

महर्षि ने कहा, ''मनुष्य का कर्तव्य ईश्वरीय आज्ञाओं के पालन, अर्थात् वेदानुकूल आचरण, धर्म के दस लक्षणों पर चलने और अधर्म-त्याग से हो सकता है।''

स्वामी जी ने कर्म के विषय पर कहा, ''कर्मों के विषय में कहा जाय तो वे भी विचित्र हैं। मनुष्य को अच्छे कर्म करने चाहिए, क्योंकि अच्छे कर्मों से ही उसका उत्थान संभव है।''

हर कोई अपने को अच्छा कहलवाना पसंद करता है, लेकिन अच्छा बनना बहुत कठिन है, क्योंकि जो अच्छाई के पथ पर चलते हैं उनकी पग-पग पर परीक्षा होती रहती है। और जो इस परीक्षा में सफल होते हैं, वही इतिहास रच जाते हैं। स्वामी दयानंद हरेक परीक्षा में उत्तीर्ण होते जा रहे थे, यही कारण था कि उन्हें अब अपने राज्य में आमंत्रित करने की राजा-महाराजाओं में होड़ मच गई थी।

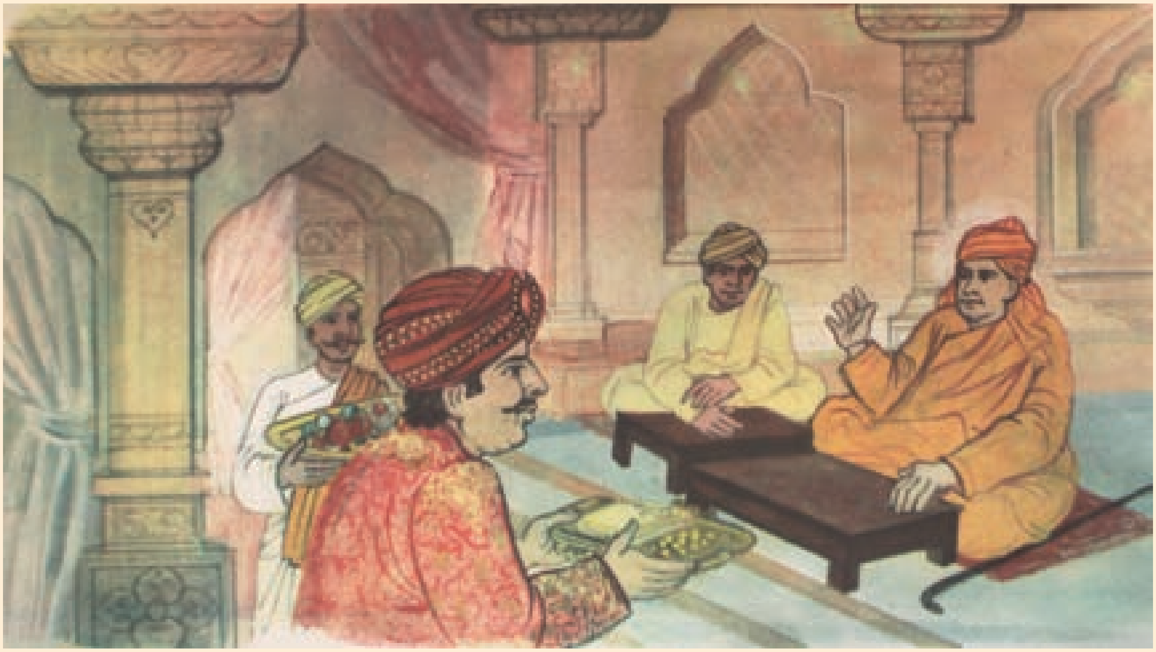

राजपूताने में स्वामी जी ने राजाओं व प्रजा को धर्म की शिक्षा दी। अब वहां वे इस उद्देश्य से पहुंचे कि वहां के राजाओं को आर्य बनाएंगे ताकि देश को आज़ाद किया जा सके। राजाओं ने स्वामी जी के इस कार्य के लिए खूब धन से सहायता की। उदयपुर, जोधपुर आदि रियासत के राजा आपके शिष्य बन गए और जैसे आज्ञा पाई, वैसा ही आचरण करने लगे। स्वामी जी उनके इष्टदेव बन गये। जोधपुर में स्वामी जी के कुछ सामान की चोरी हो गई, बाद में चोर को पकड़कर लाया गया, तो स्वामी जी ने चोर को क्षमा कर दिया।

एक दिन स्वामी जी उपदेश देने के बाद अपने शिष्यों के संग भ्रमण के लिए निकले, तो एक मंदिर के आगे स्वामी जी ने सिर झुका दिया। इस पर एक भक्त ने कहा, ''महाराज आप तो मूर्ति पूजा का बहुत विरोध करते हैं, लेकिन आपने देवी के मंदिर के आगे सिर क्यों झुकाया, क्या यह देवी का ही चमत्कार नहीं कि उन्होंने आपका सिर झुकवा दिया।''

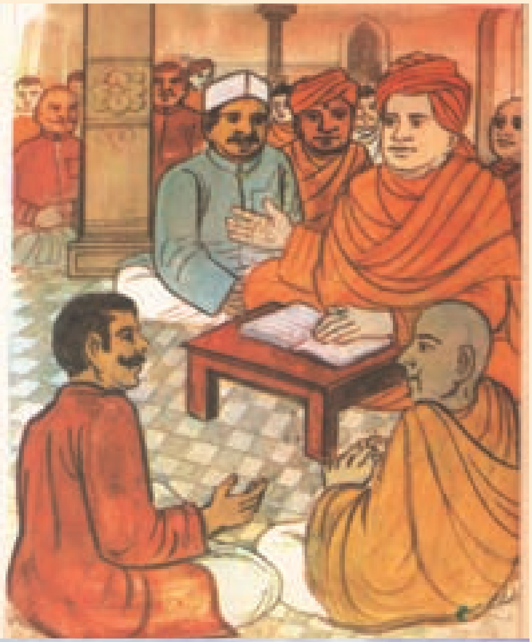

इस पर स्वामी दयानंद बोले, ''हां देवी ने मेरा सिर झुकवा दिया। आपने मंदिर के आगे अर्धनग्न उस लड़की को नहीं देखा जो खेल रही थी, उसी मातृशक्ति के सम्मान में मैंने सिर झुकाया था।

एक दिन की बात है। स्वामी दयानंद व्याख्यान दे रहे थे कि एक वणिक् स्वामी दयानन्द के पास आया और प्रणाम करके बोला, ‘‘स्वामी जी, मैं आपका परमभक्त हूं। मैं अपनी दुकान बेचकर दस हज़ार रुपये प्राप्त कर लेने की स्थिति में हूं। मैं यह राशि आर्यसमाज को दान कर देना चाहता हूं, ताकि आर्यसमाज का भव्य प्रासाद बन सके।’’

स्वामी जी ने पूछा, ‘‘तुम्हारा परिवार कितना बड़ा है?’’

‘‘मेरी धर्मपत्नी है, दो बच्चे हैं। कमाने वाला मैं ही हूं। दुकान ही मेरी आय का स्रोत है।’’ वणिक् ने बताया।

स्वामी जी ने कहा, ‘‘भलेमानस, दुकान बेचकर मिलने वाली राशि दान करके घर-गृहस्थी का भार कौन वहन करेगा? क्या घर परिवार के प्रति तुम्हारा कोई दायित्व नहीं? यह गृहस्थ धर्म के प्रति अन्याय होगा। तब दान-धर्म का निर्वाह कैसे होगा?’’

वह शांत रहा।

‘‘मैं तुम्हारी भावना का आदर करता हूं। दस हज़ार रुपये दान में नहीं ले सकता। इसमें से मात्र एक हज़ार रुपया दान लिया जा सकता है। शेष नौ हज़ार का उपयोग कर सूझ-बूझ से अपना कोई नया वणिक्-व्यापार कीजिए।’’ स्वामी दयानंद जी ने उसे आज्ञा दी।

एक दिन स्वामी जी ने अपने उपदेश में मूर्तिपूजा का जमकर विरोध किया और मूर्तिपूजा को देश की अवनति का प्रमुख कारण बताया। बाद में जब नगर भ्रमण के लिए चले तो एक अधिकारी भी उनके साथ था। उन्होंने एक मंदिर को दिखाते हुए कहा, जो निर्माणाधीन सड़क के किनारे बना हुआ था, ''महाराज आप कहें तो सड़क चौड़ी करने के बहाने इस मंदिर को तोड़ दिया जाए।'' इस पर दयानंद बोले, ''रहने दीजिए, क्योंकि मैं लोगों के दिलों से पत्थर का भगवान हटाना चाहता हूं, मंदिरों से नहीं।''

स्वामी दयानंद सरस्वती जी अपने व्याख्यानों से निरंतर समाज सुधार में लगे रहते थे।

एक बार एक पण्डित मूर्तिपूजा के पक्ष में शास्त्रार्थ के लिए आया, किन्तु वह स्वामी जी से ऊंचे चबूतरे पर बैठा। उसे लोगों ने स्वामी जी के साथ नीचे बैठने को कहा, पर वह नहीं माना।

स्वामी जी ने कहा, ''कोई बात नहीं, ऊपर ही बैठा रहने दो, ऊपर बैठने से कोई बड़ा नहीं हो जाता।'' पास के एक वृक्ष की ओर संकेत करके स्वामी जी ने कहा, ''देखो, वह कौवा पण्डित से भी ऊपर बैठा है।'' वह व्यक्ति बहुत लज्जित हुआ और वहां से उठकर चला गया। अगले दिन स्वामी जी जब नगर भ्रमण के लिए निकले तो रास्ते में स्वामी जी के चरणों में गिर पड़े और बोले, ''भगवन् आपने मेरा अहंकार खत्म कर दिया, वास्तव में मैं दुराचारी पुरोहित हूं, मेरा उद्धार करें प्रभु?''

स्वामी जी बोले, ''परमार्थ के कार्य करो,'' फिर आगे बोले, ''हमें स्पष्ट विदित है कि जड़ मूर्तियों के सम्मुख मन्दिरों में जैसे-जैसे दुराचरण होते हैं वैसे दुराचरण 5 वर्ष के बच्चे के सम्मुख भी करने की मनुष्य की हिम्मत नहीं होती। पर इससे स्पष्ट है मनुष्य से मनुष्य जितना डरता है, उतना जड़ मूर्तियों से नहीं डरता। किन्तु यह तो होता है कि लाख मूर्तियों में भी यदि मनुष्य खड़ा किया जावे, उसका चित्त भ्रष्ट और चञ्चल होवे तो वह दुराचरण की प्रवृत्ति दिखाता है।''

औपचारिक शिष्टाचार के उपरान्त वायसराय ने स्वामी जी से पूछा, ''पण्डित दयानन्द! मुझे सूचना मिली है कि आप द्वारा दूसरे मत-मतान्तरों व धर्मों की कड़ी आलोचना उन धर्मों के मानने वालों के मन में क्षोभ उत्पन्न करती है। विशेष रूप में मुस्लिम और ईसाई जनता के। क्या आप अपने शत्रुओं से किसी प्रकार का भय अनुभव करते हैं? अर्थात् क्या आप सरकार से अपनी सुरक्षा का कोई प्रबन्ध चाहते हैं?''

स्वामी दयानन्द ने उत्तर दिया, ''मुझे अपने विचारों का प्रचार करने की अंग्रेज़ी राज्य में पूरी स्वतन्त्रता है। मुझे व्यक्तिगत रूप में किसी प्रकार का खतरा नहीं है।''

''यदि ऐसा ही है तो क्या आप अपने उपदेश में अंग्रेज़ी शासन द्वारा उपलब्ध उपकारों का भी वर्णन किया करेंगे? और शासन चलाने में हमारी मदद करेंगे?''

''यह असंभव है। मैं हमेशा अंग्रेज़ी शासन के विनाश के बारे ही सोचता हूं।'' अब स्वामी दयानन्द खुलकर ईसाई मत का खंडन करने लगे। इसी के निमित्त वे पटना पहुंचे, क्योंकि वहां हिन्दुओं को ईसाई बनाया जा रहा था।

एक दिन पटना में स्वामी दयानन्द सरस्वती उपदेश दे रहे थे। उस दिन भारत के जंगी लाट लार्ड रॉबर्ट्स भी पधारे हुए थे। जंगी लाट ने स्वामी जी को प्रणाम करके कहा, ''स्वामी जी, मेरा विश्वास है कि फकीरों की दुआ भगवान अवश्य सुनता है, इसलिए आप दुआ करें कि भारत में अंग्रेज़ी राज स्थायी हो।'' यह बात सुनकर स्वामी जी का चेहरा लाल हो गया और वे बोले, ''मैं तो भगवान से सुबह-शाम प्रार्थना किया करता हूं कि भारत से जल्दी ही अंग्रेज़ी शासन समाप्त हो जाए, क्योंकि कोई कितना ही अच्छा शासन क्यों न करे, परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है, वही सर्वोपरि और उत्तम होता है।''

इस पर जंगी लाट को भी क्रोध आ गया, वे स्वामी जी से कहने लगे, ''यदि मैं तुम्हें तोप के सामने बंधवाकर कहूं कि हमारे राज्य के लिए शुभकामना करो, नहीं तो तोप से उड़ा दिये जाओगे, तब क्या करोगे?''

फिर क्या था, स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सिंह गर्जना की, और बोले, ''मैं कहूंगा मुझे तोप से उड़ा दो, लाट साहब! कौटिल्य ने लिखा है 'नत्वेवार्यस्य दासभावः' अर्थात् आर्य जाति को कभी गुलाम नहीं बनाया जा सकता, यह सर्वथा सत्य है। इसलिए, तुम्हारा राज समाप्त होना तो सुनिश्चित है।''

पहले हवन हुआ और बाद में वेदकथा ...इस दौरान पंडित बनफूल ने उनसे कहा, ''आप मूर्तिपूजा का खंडन न करें तो हिन्दू आपसे अप्रसन्न न होंगे और महाराज जम्मू-कश्मीर आपसे बहुत प्रसन्न होंगे।''

''महाराज जम्मू-कश्मीर को प्रसन्न करूं अथवा ईश्वर की आज्ञा का पालन करूं, जो वेदों में अंकित है?'' महर्षि ने कहा।

धर्म प्रचार करते हुए वहां से स्वामी दयानंद जी कुछ धर्मनिष्ठ सिख बंधुओं के निमंत्रण पर अमृतसर पहुंचे।

अब स्वामी दयानन्द को आभास हुआ कि अपने धर्म की बुराइयों का काफी सफाया हो चुका है, तो उनका ध्यान दूसरे धर्मों की बुराइयों पर टिका। उन्होंने कुरान और बाइबिल का अध्ययन किया और उनका जोरदार शब्दों में खंडन करने लगे। इससे ईसाई और मुसलमान भी उनके शत्रु बन गये, पोंगा-पंडित तो उनके दुश्मन थे ही। इसलिए उन्हें बार-बार जहर देकर मारना चाहा, लेकिन जहर को वे न्योली क्रिया द्वारा निकाल देते थे।

मिर्जापुर में दयानन्द ने मुसलमानों को पराजित किया। कितने ही मुसलमानों ने दयानन्द के हाथों से यज्ञोपवीत पहन कर अपना जीवन धन्य किया।

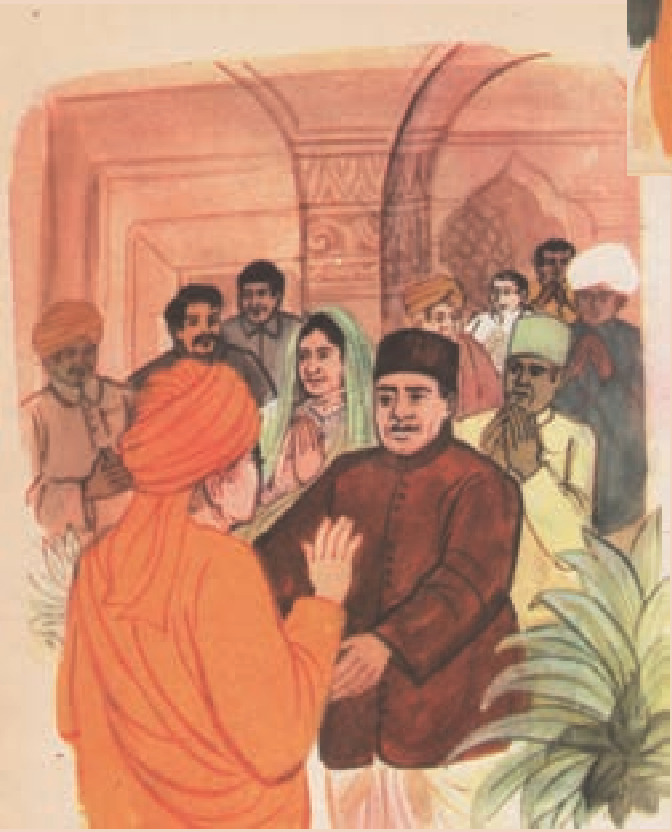

पंडित शंकर ने स्वामी जी से पूछा, "आपकी कौनसी बात मानने योग्य नहीं होती?" इस पर स्वामी जी ने कहा, "यदि मेरी भी कोई बात तुम्हें असत्य तथा वेद-विरुद्ध प्रतीत हो तो उसे भी मत मानना, क्योंकि व्यक्ति को हमेशा सत्य को ग्रहण करने के लिए ही उद्यत रहना चाहिए। असत्य के बल पर कुछ भी प्राप्त नहीं किया जा सकता, क्योंकि असत्य से सत्य को छिपाया नहीं जा सकता, ऐसा मैं मानता हूं।"

एक दिन सर सय्यद अहमद महर्षि दयानन्द जी का पादरियों से हवन की वैज्ञानिकता पर शास्त्रार्थ देखने आए, जिसमें पादरी हार गए। बाद में वे स्वामी जी से कहने लगे, ''महाराज, आपकी अन्य बातें तो युक्तिसंगत हैं, परन्तु यह बात समझ में नहीं आती कि थोड़े-से हवन से वायु का सुधार कैसे होता है?''

महर्षि ने कहा, ''जैसे थोड़े-से बघार से सारी दाल सुगन्धित हो जाती है और दूर तक सुगन्ध जाती है, वैसे ही हवन में डाली हुई सामग्री छिन्न-भिन्न हो वायु में फैलकर उसका सुधार कर देती है।'' इससे उनका संशय दूर हो गया। फिर उन्होंने एक प्रश्न और किया, ''पाप और पुण्य का प्रभाव क्या है?''

स्वामी जी बोले, ''मनुष्य पाप के कारण पशु-जन्म को गए और पाप छूटने पर फिर भी मनुष्य-जन्म में आये। आदि-सृष्टि में पशुओं को एक दफे मनुष्य-जन्म प्राप्त हुआ। फिर तो आचार भेद अनुकूल पाप-पुण्यानुसार वे भी जन्मान्तर के चक्कर में आ फंसे।''

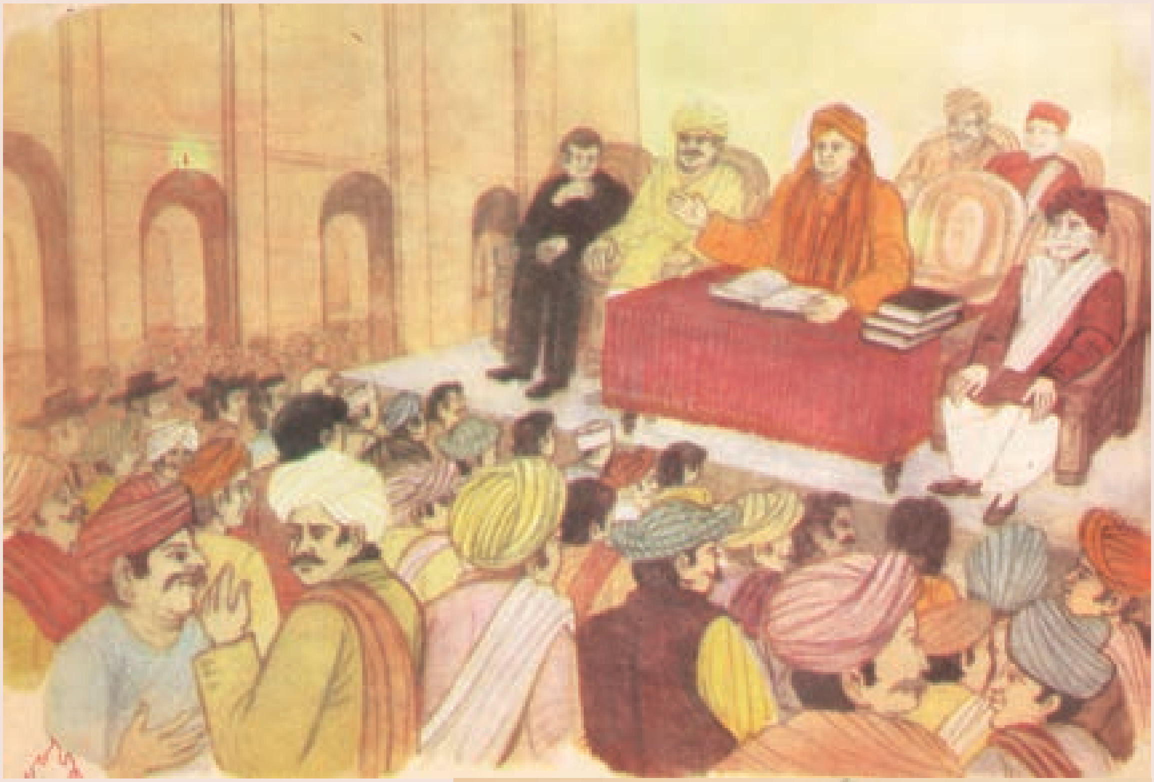

शंकर सेठ ने स्वामी जी से पूछा, ''प्रभु पाप और पुण्य में क्या अंतर होता है?''

इस पर स्वामी जी ने कहा, ''पाप-पुण्य मनुष्य-जन्म ही में केवल होते हैं। पश्वादिकों के जन्म में भी हैं और उस स्वतन्त्रता के जो-जो परिणाम होवेंगे, उन्हें भी स्वीकार करना चाहिए।''

फिर उन्होंने स्वामी से उसका हाथ देखने को कहा तो स्वामी जी बोले, ''आपके हाथ में हाड़, मांस, चर्म, रक्त तथा पुरुषार्थ करने की शक्ति है।''

मिर्जापुर में जब स्वामी जी ने पुनर्जन्म की प्रामाणिकता को लेकर एक मौलवी को हराया तो स्वामी जी के समर्थन में दक्षिणपंथियों ने एक विशाल जुलूस निकाला। जुलूस को संबोधित करते हुए स्वामी जी बोले, ''इस जन्मान्तर के विषय में अनेक मत हैं। कोई कहते हैं कि मनुष्य का एक ही जन्म है अर्थात् मरने के पश्चात् नहीं होता। कोई कहते हैं कि जन्म अनेक हैं अर्थात् मनुष्य को मरने पर फिर दूसरे जन्म (प्राप्त होते) हैं। हमारा सिद्धान्त-मनुष्य का पुनर्जन्म है अर्थात् जन्म अनेक हैं : ऐसा है। सब चराचर सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का क्रम यदि देखा जाय तो उस सादृश्य से जीव-सृष्टि का भी पूर्व-जन्म था। यह हमारा मध्यम जन्म है और मोक्ष होने तक अभी जन्म होने को हैं। इस परम्परा से इस मध्य-जन्म की सम्भावना तभी हुई जब कि पूर्व-जन्म पहले था, क्योंकि यदि कुएं में जल न हो तो डोल में पानी कहां से आवे? इस दृष्टान्त की योजना इस स्थल पर ठीक होती है।''

स्वामी जी लोगों को एक ही ईश्वर का उपदेश देते हुए कहते थे, ''अपने मन से चारों ओर बाहर-भीतर परमात्मा को पूर्ण जानकर निर्भय, निश्शंक, उत्साही, आनन्दित और पुरुषार्थी रहना चाहिए।''

स्वामी जी को व्याख्यानों के लिए पूरे देश में बुलाया जाता था। उनके भाषणों के लिए टिकट तक बुक होने लगे, कई बार तो एडवांस में टिकट बुक हो जाने के कारण बहुत से जिज्ञासु उनके भाषण सुनने से वंचित रह जाते थे। मुंबई के कावस जी फ्रामजी हाल में स्वामी जी का व्याख्यान सुनने के लिए लोग विदेश से भी आए थे और जब भीड़ बढ़ गई तो ऐसा पहली बार हुआ था कि न केवल टिकट की व्यवस्था की गई, वरन ब्लैक में टिकट बेचने की शिकायत भी कुछ लोगों की ओर से मिली। ब्लैक में टिकट कुछ लोगों ने तय मूल्य पर खरीदकर अधिक में बेची थी।

भारत का कोई शहर ऐसा नहीं था, जहां स्वामी जी के
व्याख्यानों की चर्चा न होती थी।

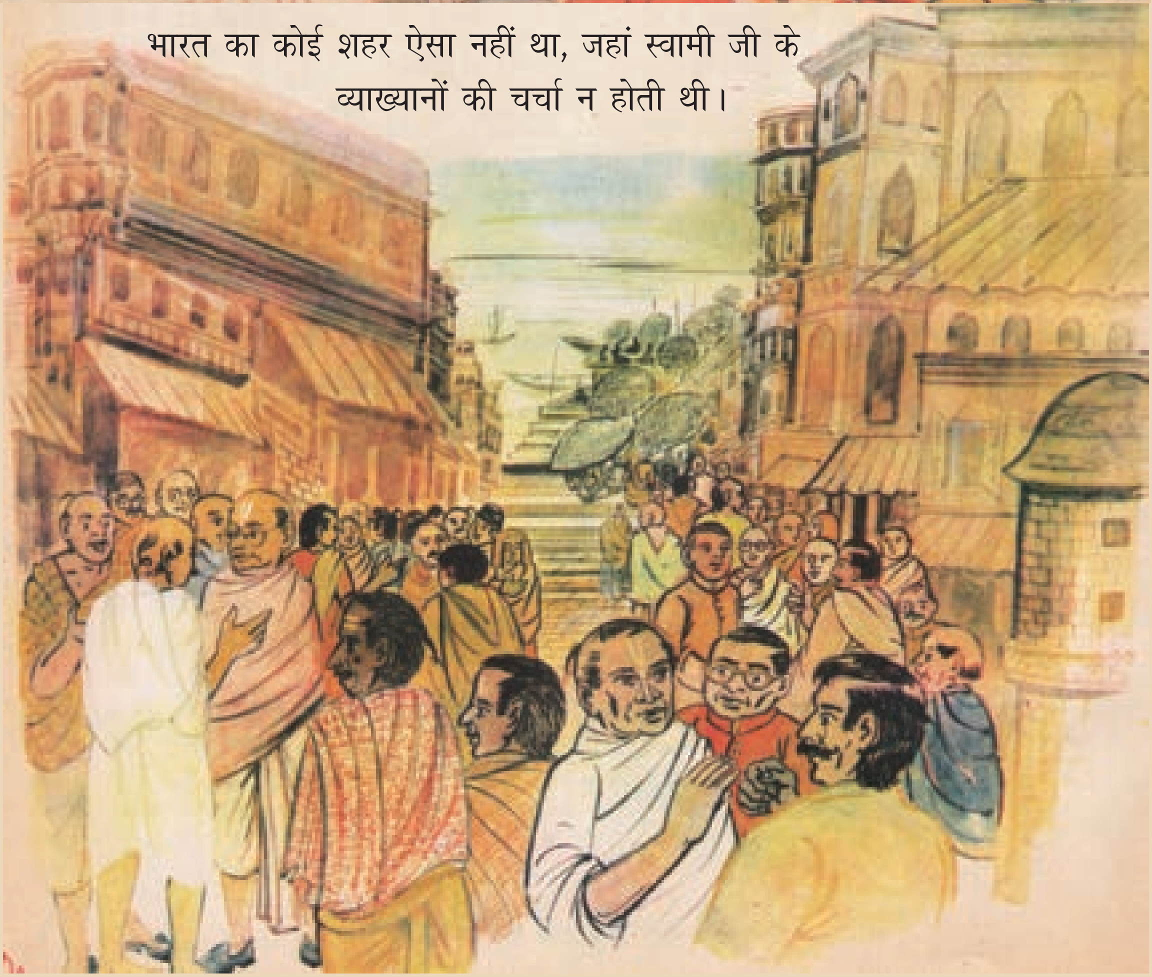

शास्त्रार्थ में बार-बार परास्त होने के बाद, स्वामी जी के विरोधी और तो कुछ न कर सके, एक व्यक्ति को स्वामी जी के आकार का तैयार किया, जिसे सर घुटा, गले में जूतों की माला पहना व गधे पर बिठा कर सारे शहर में घुमाना शुरू किया। यह दृश्य स्वामी जी के शिष्यों से नहीं देखा गया। वे आग बबूला हो गये और स्वामी जी को यह सब दिखाकर कहने लगे, ''गुरु जी, यह क्या अनर्थ हो रहा है? विरोधियों ने आपकी क्या दशा बना रखी है?''

स्वामी जी थोड़ी देर चुप रहे, फिर धैर्यपूर्वक उन्होंने अपने शिष्यों से कहा, ''ठीक ही तो कर रहे हैं, नकली दयानन्द का तो यही हाल होना चाहिए, असली दयानन्द तो आपके सामने खड़ा है।''

सन् 1877 ई. में लार्ड लिटन ने दिल्ली में दरबार किया, सब प्रान्तों के गवर्नर तथा अंग्रेज और देसी राजा-महाराजा एवं सर्वसाधारण गण पधारे। स्वामी जी को प्रचार की धुन थी। ऐसा बड़ा अवसर हाथ से चला जाए, यह असम्भव था! जहां राजा-महाराजाओं के शिविर थे, वहीं दयानन्द सरस्वती का भी डेरा विद्यमान था। उसकी खूब धूम थी। स्वामी जी ने वहां उपदेशों की झड़ी लगा दी और कई राजा-महाराजा तथा जन नेताओं ने दर्शन किए और उपदेशों का अमृतपान किया।

स्वामीजी ने मुसलमानों के नेता सर सय्यद अहमद खां, ब्रह्मसमाज के केशवचन्द्र सेन, नवीनचन्द्र राय और हरिश्चन्द्र चिंतामणि तथा हिन्दुओं में कन्हैयालाल अलखधारी और मुंशी इन्द्रमणि, इन सबको अपने डेरे पर बुलाया और कहा, ''अलग-अलग काम करने से क्या बनता है? आओ, विज्ञान पर आधारित वैदिक धर्म को मानकर एक साथ काम करें'' परन्तु शोक है कि ये महाशय अपने अलग-अलग मतों में ही रहे और एक न हो सके। ये सब महाशय दूसरे मतों के थे, परन्तु स्वामी जी का इन पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि मरते दम तक ऋषि के भक्त बने रहे।

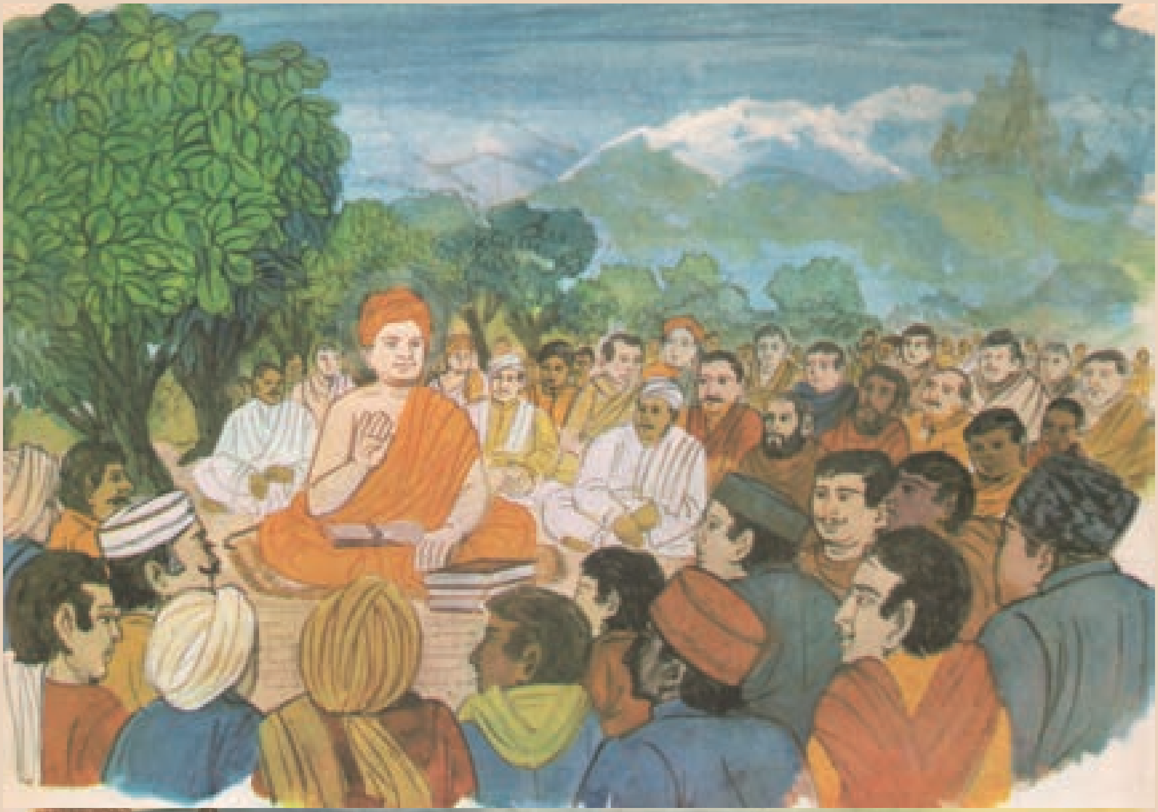

दिल्ली में दरबार में स्वामी जी को सफलता न मिली, लेकिन इसका प्रभाव यह पड़ा कि उन्हें अब दूर-दराज भी उपदेशों के लिए बुलाया जाने लगा और हर तरफ उनकी चर्चा होती रहती थी।

एक बार यज्ञ के बाद दीनदयाल नामक वणिक ने स्वामी जी से पूछा, ''महाराज अध्ययन आखिर हमें क्यों करना चाहिए?''

स्वामी जी बोले, ''अध्ययन-अध्यापन अर्थात् लड़कों को पढ़ाना, वैसे ही लड़कियों को पढ़ाना यह है। अध्ययन करना अर्थात् ब्रह्मचर्य निभाना यह बड़ा भारी धर्म है। ब्रह्मचर्य के कारण शरीर-बल और बुद्धिबल प्राप्त होता है। हमें अच्छे ग्रंथों का ही अध्ययन करना चाहिए, क्योंकि अध्ययन ही ज्ञान प्राप्ति का एकमात्र साधन है। अच्छी बातें जहां से भी मिले ग्रहण कर लेनी चाहिए, इसलिए अध्ययन करने की आदत डालनी चाहिए, लेकिन धर्मानुसार आचरण करते हुए ही अध्ययन करें।''

एक बार स्वामी जी काशी फिर गए, लेकिन इस बार उन्हें लेने के लिए स्वयं काशी नरेश श्री ईश्वरी नारायण सिंह जी ने अपने राज निवास पर आने का निमंत्रण दिया और वहां उन्हें बुलाकर शास्त्रार्थ में हुई भूल के लिए क्षमा मांगी और कहा कि सचाई यही है कि काशी शास्त्रार्थ में विजय आपकी हुई थी। इस दौरान एक पंडित देवनारायण भड़क गया और कहा कि महाराज आप झुक क्यों गए, मैं अभी स्वामी दयानंद को हरा देता हूं। वह फिर स्वामी जी से बोला, ''मुझे अभी आपसे शास्त्रार्थ करना है।''

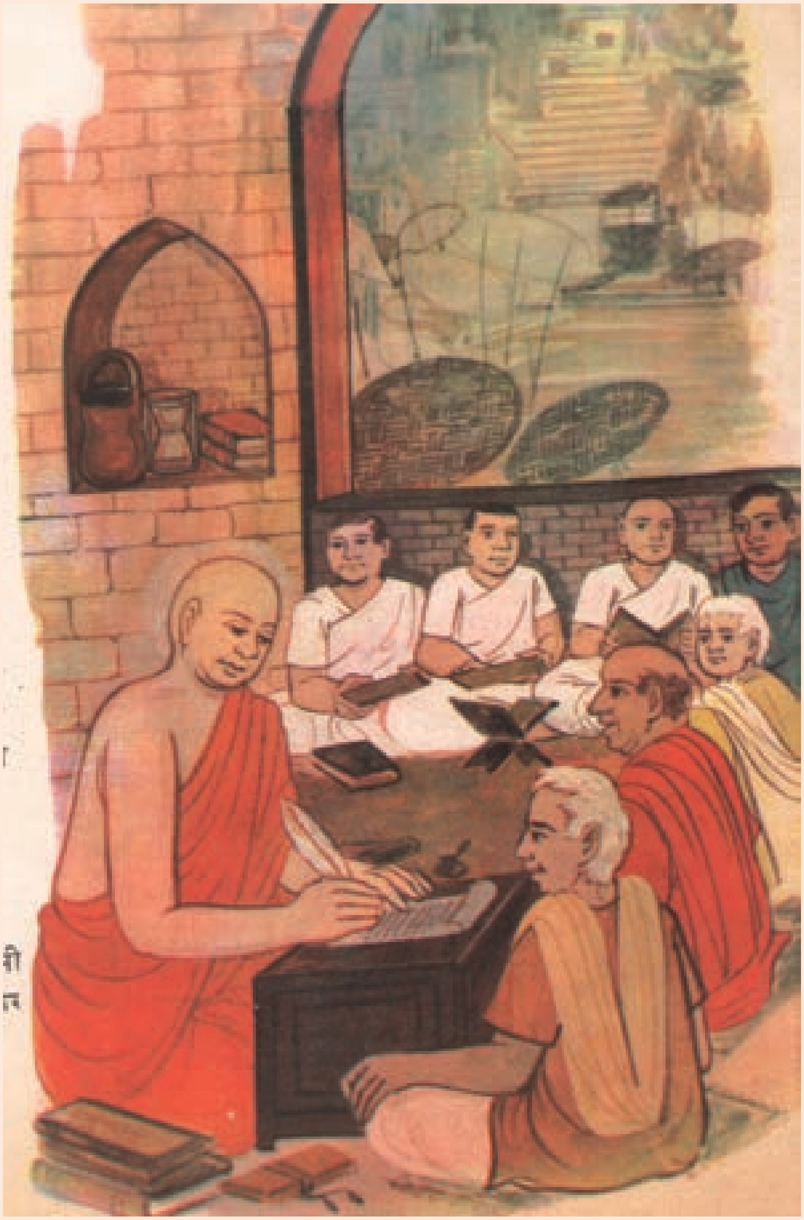

''विषय क्या होगा?'' स्वामी जी बोले, तो उसने कहा, ''आपको हराना है।''

स्वामी जी ने एक कागज पर लिखकर दे दिया कि मैं आपसे हार गया हूं, अब आपको मुझसे शास्त्रार्थ करने की जरूरत नहीं है।''

स्वामी जी के इतना कहते ही वह व्यक्ति स्वामी जी के चरणों में गिर पड़ा और उनका भक्त बन गया। उसने रोते हुए कहा, ''महाराज आपने मेरा अहंकार विनष्ट कर दिया।''

इस पर स्वामी जी ने कहा, ''अहंकार मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है। वास्तव में ज्ञान और सत्य किसी से कभी पराजित नहीं हो सकता। आपका अहंकार और असत्य पराजित हुआ है सत्य नहीं।''

मुंबई से स्वामी जी भक्तों के कहने पर एक बार संयुक्त प्रांत में प्रचार करने के लिए पुनः आए। इस क्रम में एक दिन साहू श्यामसुन्दर ने, जो मुरादाबाद के रईस थे, परन्तु वेश्यागमन आदि दुर्व्यसनों में ग्रस्त थे, स्वामी दयानन्द से प्रार्थना की, ''महाराज, आप मेरे घर पर चलकर भोजन कीजिए।'' महर्षि ने इस प्रार्थना को अस्वीकार किया। परन्तु इसी समय जब एक दूसरे सज्जन ने यही प्रार्थना की तो उसे स्वीकार कर लिया। साहू श्यामसुन्दर ने महर्षि को उपालम्भ दिया तो उस समय तो महाराज चुप रहे, किन्तु व्याख्यान में इस घटना का ज़िक्र करके और साहू साहब को सम्बोधन करके कहा कि जब तक तू कुकर्म न छोड़ेगा, हम तेरे घर पर जाकर भोजन न करेंगे।

उसके बाद वे इन्द्रप्रस्थ आ गए। महर्षि दयानन्द दिल्ली में थे तो पंजाब के ब्रह्म समाजियों तथा अन्य लोगों ने उन्हें लाहौर पधारने की प्रार्थना की। महर्षि लाहौर पहुंचे। व्याख्यान आरम्भ हुए। ब्रह्म समाजी घबरा गए और स्वामी जी से रुष्ट हो गए। जब मूर्तिपूजा का खंडन हुआ तो दूसरे लोग भी नाराज़ हो गए।

बम्बई में एक पंडित ने महर्षि दयानन्द से कहा, ''सुना है, आप धन ले लेते हैं और शास्त्र में लिखा है कि यतियों को सुवर्ण ने देवें।''

महर्षि ने कहा, ''सुवर्ण नहीं तो क्या आपकी सम्मति में रत्न आदि लेने चाहिए?'' उसे समझाया, ''यतियों के लिए धन संग्रह करने का निषेध है। परोपकार में व्यय करने के लिए धन लेना पाप नहीं। हम भी जब तक कौपीन लगाकर गंगा-घाट पर घूमते थे तो किसी से कुछ न लेते थे, किन्तु जब से हमने परोपकार के कार्यों में भाग लेना आरम्भ किया है, हमें उन कार्यों के लिए धन लेना पड़ता है। जैसे कुएं की मिट्टी कुएं में ही लग जाती है, ऐसे ही हम भी जो धन जिनसे लेते हैं, वह उन्हीं के हितकर कार्यों में लगा देते हैं।''

''दान का अर्थ है क्या?'' किसी दूसरे से प्रश्न किया, इस पर स्वामी जी बोले, ''दान शब्द का आजकल जो अर्थ लेते हैं वह नहीं है। विवेचनामूलक दान सदा होता रहा है। केवल विद्या का दान ही दान है, अन्न वस्त्रादिकों के दान विद्यादान की सहायता करते हैं, इसलिए उन्हें भी दान कहना उचित है। विद्यादान अक्षय दान है। दान उसी को कहते हैं जो विद्या-प्रचार, कला-कौशल की उन्नति, और रोगियों तथा अनाथों की सेवा में लगाया जाय।''

पूजा के योग्य सबसे पहला देवता माता है। पुत्रों को चाहिए कि माता की टहल-सेवा तन-मन-धन से करें। उसे सब तरह से प्रसन्न करें। उसका अपमान कभी न करें। दूसरा देव पिता है। उसका भी पूजन माता के समान होना चाहिए। तीसरा देव विद्या पढ़ानेवाला गुरु है। चौथा देव वह अतिथि है जो विद्वान् धार्मिक, सरल और सबकी भलाई करने वाला हो, जो स्थान पर घूम कर सच्चे उपदेश से लोगों को सुख देने का प्रयत्न करे। ऐसे सन्त और सज्जन मनुष्य की सेवा करना बड़ा भारी पुण्य है। पाँचवाँ देव पति के लिए पत्नी व पत्नी के लिए पति है, परमेश्वर के पास पहुँचने की यही पाँच सीढ़ियाँ हैं। - स्वामी दयानंद

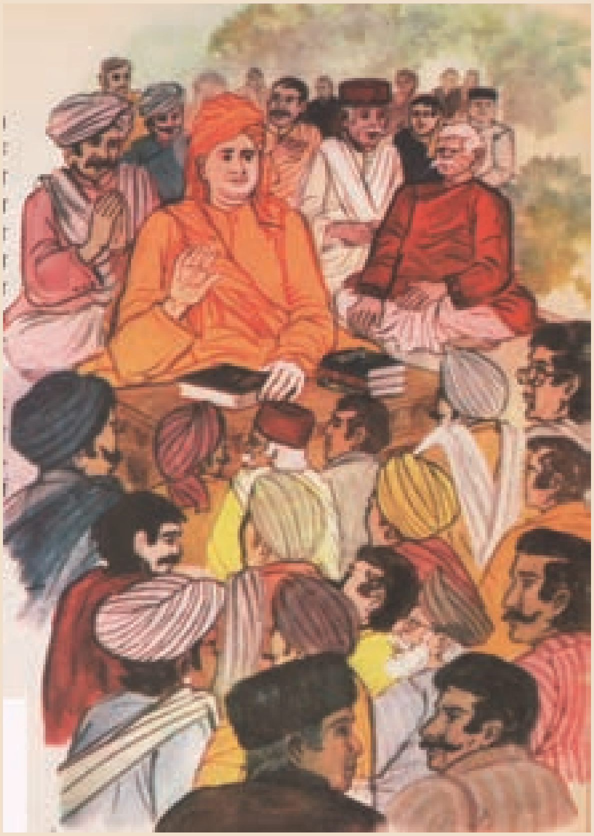

''भगवान क्या शिवजी, राम आदि देवता मर गए?'' किसी ने प्रश्न किया तो स्वामी जी बोले, ''देव मर गए, इससे यह अभिप्राय है कि इस पृथिवी पर से उनका शरीर जाता रहा, परन्तु देवता और मनुष्य की आत्मा अमर है। इस प्रकार जाति के विचार से देवजाति अर्थात् विद्वानों का समूह अमर है। अर्थात् सदैव कुछ न कुछ विद्वान पुरुष रहते हैं। इस कारण से कहा है कि विद्वान ही देव हैं। इसलिए देवजाति तो अमर है, क्योंकि ज्ञान कभी नहीं मरता।''

हरिद्वार में 12 साल में एक बार कुम्भ का मेला लगता है। इसमें भारत भर के नर-नारी लाखों की संख्या में इकट्ठे होते हैं। इतनी भीड़ होती है कि सारा भारत ही यहां इकट्ठा हुआ दृष्टिगोचर होता है। परंतु यहां पर सबसे अधिक पाखण्ड का बोलबाला देखा जा सकता है। इस प्रकार लोगों को सामाजिक कुरीतियों से मुक्त करके और वेदों के प्रति जिज्ञासु बनने के लिए स्वामी दयानन्द ने हरिद्वार का रुख किया।

हरिद्वार से यात्री ऋषिकेश को जाते हैं। ऋषिकेश साधुओं का स्थान है। उसी रास्ते में एक स्थान पर दयानन्द ने अपना झण्डा गाड़ा। उस पर लिखा था : 'पाखण्ड-खण्डिनी पताका'।

लोग 'हर की पैड़ी' पर स्नान करके समझते हमारे जीवन-भर के पाप धुल गए। यहां पहुंचते तो यह भ्रम ही धुल जाता। यहां तो उपदेश होता कि 'हर की पैड़ी' पर नहाने से कुछ नहीं बनता। अच्छे कर्म करो, वेद की शिक्षा पर चलो! यही पुण्य है, यही तीर्थ है। वेदों की शरण में आओ, यह परमात्मा की वाणी है।

कुम्भ में आकर स्वामी जी ने भारत का एक छोटा-सा चित्र देख लिया। साधुओं के कई रंग थे। सबसे बुरे नागा थे, जो लंगोट तक न पहनते थे। न उन्हें स्त्री की लज्जा थी, न पुरुष की। बैठे कुचेष्टा करते रहते। वैरागी, उदासी, निर्मल और न जाने कितने प्रकार के अन्य साधु थे। इन्हें पहले नहाने का हक था, पुलिस न होती तो दंगा करते। महन्त और साधु गद्दीदार हाथियों पर चढ़कर आते। ठाठ राजाओं से भी बढ़कर था। जो पूछो तो 'त्यागी' हैं। ऐसा था उन दिनों के भारत का हाल।

कुंभ मेले से स्वामी दयानन्द की ख्याति संसारभर में फैल गई और देश इस राष्ट्रीय संत के पीछे-पीछे चलने लगा। कुंभ में स्वामी जी ने लोगों से तीन प्रतिज्ञाएं करवाई, जो इस प्रकार हैं :

(1) वैदिक धर्म में प्रविष्ट हुई पौराणिक अनर्गलताओं का विनाश करना होगा।

(2) गौतम बुद्ध से पूर्व के युग की प्राचीन धार्मिक प्रणालियों की पुनः स्थापना करनी होगी।

(3) सत्य का प्रकाश और प्रचार करना ही धर्म है।

चौधरी डूंगर ने स्वामी जी से पूछा, "महाराज कर्मकांड क्या होते हैं?" तो स्वामी जी बोले, "वेदों के तीन कर्मकाण्ड हैं : उपासना, कर्म और ज्ञान। परन्तु उपासना-काण्ड में केवल एक उपासना ही का प्रतिपादन हो यही नहीं अथवा ज्ञान-काण्ड में कर्म ही का प्रतिपादन हो, यह नहीं। उपासना-काण्ड में उपासना प्रधान है, परन्तु उसमें ज्ञान और कर्म का निरूपण भी मिलता है। जो हाथों से प्रयोग होता है उसके जो मन्त्र उस समय कहे जाते हैं; उससे कुछ भी सम्बन्ध नहीं रहता, इससे मन्त्रोच्चार कर्म के उद्देश्य से नहीं होता, किन्तु परमेश्वर की स्तुति मुंह से होती रहे यही प्रधान उद्देश्य है और कोई-कोई मन्त्र ऐसे भी हैं जिनमें वे लाभ कहे गए हैं। सारांश यह है कि वेद मन्त्रों को कहने से वेद की रक्षा ही मुख्य प्रयोजन है। इस प्रकार कर्मकण्ड बिलकुल निष्फल नहीं है।

कुंभ में कई पंडितों ने स्वामी जी से मोक्ष और कल्याण पर चर्चा की, तो स्वामी जी ने अपनी बात स्पष्ट करते हुए कहा, ''यदि अपना मोक्ष और कल्याण चाहते हो, तो वेदों के अनुकूल अपने में सुधार करो। जो व्यक्ति वेदों के अनुसार आचरण करता है, वह इस लोक में हमेशा सुख का भोग करता है।'' आगे स्वामी जी ने कहा, ''कुछ बनना ही चाहते हो तो कल्याण मार्ग के पथिक बनो। परोपकार करके दूसरों का कल्याण करने से ही अपना कल्याण होना संभव है, क्योंकि यही परमेश्वर का विधान है।''

इसके बाद एक पंडित ने पूछा तो अब कर्तव्य भी बता दो, स्वामी जी बोले, ''मनुष्य का यह परम कर्तव्य है कि वह वाणी और लेखनी द्वारा सत्य का प्रकाश और असत्य का नाश करे। ऐसा न करने से मनुष्यों की उन्नति नहीं हो सकती। अपने कर्तव्य का पालन करने में मनुष्य को गर्व का अनुभव होना चाहिए।'' फिर स्वामी जी थोड़े असहज हुए और आगे बोले, ''परंतु दुख की बात है कि आज के पंडित अपने कर्तव्यों का पालन नहीं करते हैं। वे परोपकार और परमार्थ का पथ भूलकर स्वार्थ के पथ पर चल पड़े हैं, जो देश की अवनति एवं पराधीनता का कारण बन गया है।''

महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने स्वामी जी से अपने निवास स्थान पर ठहरने की प्रार्थना की तो स्वामी जी बोले, "मेरा नियम किसी गृहस्थी के निवास पर ठहरने का नहीं है।"

बाबू केशवचंद्रसेन और ईश्वरचंद्र विद्यासागर जी ने भी स्वामी दयानंद से भेंट की। इस अवसर पर केशवचंद्र ने पूछा, "अंग्रेजी शासन के बारे में आपके क्या विचार हैं?"

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी बोले, "जो शासक नमक आदि पर भी कर लेता है, वह घोर निंदनीय है। ऐसा करना कष्ट और क्लेशकारी है।"

महादेव गोविंद रानाडे उस समय पूना में न्यायाधीश थे। उसके बाद वे बंबई उच्च न्यायालय के न्यायाधीश बने। जब उन्हें पता चला कि स्वामी जी पूना में पधारे हैं, वे भागे हुए गए और स्वामी का स्वागत किया। उन्होंने स्वामी जी से पूछा, ''महाराज न्याय क्या है?''

''स्वामी जी बोले, ''जो प्रत्यक्षादि प्रमाणों की परीक्षा से सत्य सिद्ध हो तथा पक्षपातरहित धर्मरूप आचरण हो, वह 'न्याय' कहलाता है। प्रत्येक क्षण में ईश्वर के न्याय की व्यवस्था जारी है और अपने-अपने पाप-पुण्य के अनुसार हमें बुरा-भला जन्म मिला करता है।''

फिर उन्होंने पूछा, ''महाराज नैमित्तिक ज्ञान क्या है?'' इस पर स्वामी जी ने उत्तर दिया, '' जीव को 'मैं हूं' अर्थात् 'अपने अस्तित्व का' जो ज्ञान है वह स्वाभाविक ज्ञान है, परन्तु चक्षु, श्रोत्र इत्यादि इन्द्रियों से जो ज्ञान उत्पन्न होता है; वह आत्मा का नैमित्तिक ज्ञान है। नैमित्तिक (ज्ञान) तीन कारण से उत्पन्न होता है : देश, काल और वस्तु। इन तीनों का जैसा-जैसा कर्मेन्द्रियों के साथ सम्बन्ध होता है वैसे-वैसे संस्कार आत्मा पर होते हैं।

अब जैसे-जैसे ये निमित्त निकल जाते हैं वैसे-वैसे इस नैमित्तिक ज्ञान का नाश होता है, अर्थात् पूर्व जन्म का देश, काल, शरीर का वियोग होने से उस समय का नैमित्तिक ज्ञान नहीं रहता। इसको छोड़ इस विचार में एक बात और ध्यान में रखने योग्य है कि ज्ञान का स्वभाव ऐसा है कि वह अयुगपत् क्रम से होता है, अर्थात् एक ही समयावच्छेद करके आत्मा के बीच दो-तीन ज्ञान एकदम स्फुरित हो सकते नहीं। इस नियम की व्यवस्था से पूर्व-जन्म के विस्मरण का समाधान भली-भांति हो जाता है। इस जन्म में 'मैं हूं' अर्थात् अपनी स्थिति का ज्ञान आत्मा को ठीक-ठीक रहता है, इसलिए पूर्व-जन्म के ज्ञान का स्फुरण आत्मा को नहीं होता।

स्वामी दयानंद से केशवचंद्र भी मिले और उनसे नैतिकता पर कुछ बोलने को कहा, तो स्वामी जी बोले, ''बच्चों को नैतिकता का पाठ पढ़ाना उसके माता-पिता का कर्तव्य है, क्योंकि नैतिक शिक्षा ही श्रेष्ठ समाज का निर्माण कर सकती है।''

पंडिता रमाबाई जब स्वामी दयानंद से मिली, उन्हें स्वामी जी ने कहा, ''आप एक समझदार महिला हैं, इसलिए आपको स्त्री शिक्षा के लिए काम करना चाहिए। देश में बेटी पढ़ाओ और बेटी बचाओ की बहुत जरूरत है, क्योंकि पैदा होते ही बेटियों को मार दिया जाता है और जो बच जाती हैं उन्हें अनपढ़ रखा जाता है।''

स्वामी जी का स्पष्ट कहना था कि ''ईश्वर ने मनुष्य को जितनी शक्ति दे रक्खी है, उतना पुरुषार्थ उसे अवश्य करना चाहिए। इसके बाद ईश्वर की सहायता की कामना करनी चाहिए।''

महर्षि जी मानते थे कि ''पुरुषार्थ प्रारब्ध से बड़ा इसलिये है कि जिससे संचित प्रारब्ध बनते जिसके सुधरने से सब सुधरते और जिसके बिगड़ने से सब बिगड़ते हैं, इसी से प्रारब्ध की अपेक्षा पुरुषार्थ बड़ा है।''

स्वामी जी ने पूना में 15 प्रवचन दिए। जिसके बाद उनका भव्य जुलूस निकाला गया। महादेव गोविंद रानाडे और बाबू केशवचंद्र सेन ने एक भव्य कार्यक्रम में स्वामी का सार्वजनिक अभिनंदन किया।

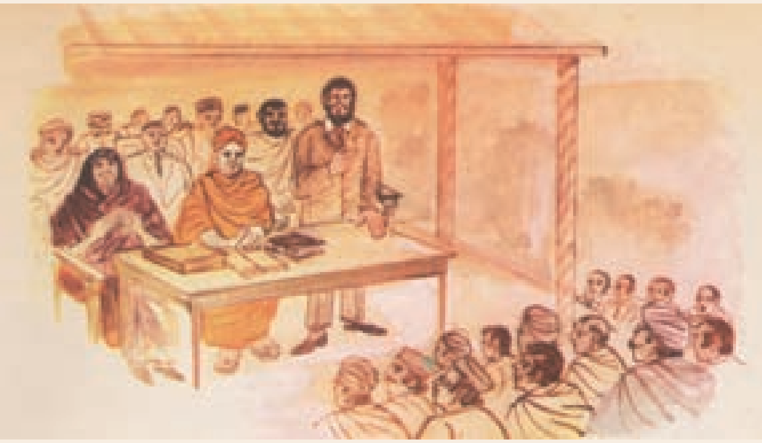

थियोसोफिकल सोसायटी के संस्थापक कर्नल आल्काट और मैडम ब्लेवाटस्की स्वामी दयानंद को अमेरिका में बुलाकर वहां उनके प्रवचन कराना चाहते थे। लेकिन स्वामी जी ने यह कहकर अमेरिका जाने से इंकार कर दिया कि पहले मुझे अपने देश में समाज सुधार करना है। इसलिए वे अमेरिका नहीं आ आ सकते। अंततः वे दोनों ही अमेरिका से चलकर मुंबई पहुंचे, लेकिन स्वामी जी इतने व्यस्त थे कि मुंबई न जा सके। तब ये दोनों स्वामी जी से मिलने के लिए सहारनपुर पहुंचे। वहां उन्होंने वैदिक धर्म पर चर्चा की। इन दोनों के साथ स्वामीजी मेरठ गए। कर्नल आल्काट ने वैदिक धर्म की प्रशंसा की और ईसाई मत का खंडन किया। आल्काट और मैडम ब्लेवाटस्की बंबई चले गए।

बाद में स्वामी दयानंद जी को पता चला कि कर्नल आल्काट और मैडम ब्लेवाटस्की केवल दिखावे के लिए ही वैदिक धर्म की प्रशंसा करते हैं उनका उद्देश्य हिन्दुओं में फूट डालकर ईसाई धर्म का प्रचार करना है, तो स्वामी जी ने यह कहकर उनसे संबंध विच्छेद कर लिए कि हिन्दु सिंधु की तरह है, मूर्ति पूजा करने वाले भी हमारे अपने आर्य ही हैं और नास्तिक भी और वेदों के पथ पर चलने वाले आर्य समाजी भी...हमें एक रहने दो, हममें मतभेद है मनभेद नहीं।''

हुगली में काशी नरेश के राजपंडित पं. ताराचरण शास्त्री ने भारी जनसमूह के समक्ष स्वामी दयानंद सरस्वती जी से शास्त्रार्थ किया और वे पराजित हो गए। उन्होंने अपनी हार स्वीकार की और स्वामी जी से गले मिलकर कहा, ''भारत में आपसे बड़ा विद्वान कोई नहीं है। आपका जन्म भारत के उद्धार के लिए हुआ है। मुझे गर्व है मुझको आपसे शास्त्रार्थ करने का सौभाग्य मिला, लेकिन सचाई यह है कि मैं तो आपके चरणों की धूल के भी बराबर नहीं हूं।'' इस पर स्वामी जी ने कहा, ''ऐसी बात नहीं है, आप भी विद्वान हैं और यदि आप मेरा साथ दें तो हम मिलकर दुनिया को जीत सकते हैं।''

''मैं कोई विद्वान नहीं, केवल राजकर्मचारी हूं।'' यह कहकर उन्होंने साथ देने से मना कर दिया।

मिर्जापुर में पं. गोपाल भट्ट और जयश्री स्वामी जी से हार गए तो एक साहूकार ने स्वामी जी से हाथ जोड़कर निवेदन किया कि वे यहां एक विद्यालय खोलें, जिसका खर्च गांव वाले उठाने को तैयार हैं। वहां विद्यालय खोला गया।

14 नवंबर 1878 को अजमेर में स्वामी दयानंद का पादरी ग्रे और डॉक्टर हसबैंड से शास्त्रार्थ हुआ। इस विषय में किशनगढ़ के दीवान रायबहादुर श्यामलाल ने लिखा है कि स्वामी जी की जीत हुई थी। यह शास्त्रार्थ थियोसोफिस्ट में भी प्रकाशित हुआ था।

आगरा के रोमन कैथोलिक ईसाइयों के गिरजाघर सेंटपीटर्स चर्च के बिशप से स्वामी जी का शास्त्रार्थ हुआ और बिशप हार गए। अंत में उन्होंने स्वामी जी से पूछा आप हिन्दू लोग पूजा करते हैं, उसका वास्तविक अर्थ क्या है, इस पर स्वामी जी ने बताया, "पूजा शब्द का अर्थ क्या है? पूजा शब्द का अर्थ सत्कार करना ऐसा है, न कि षोडशोचार पूजा। अतिथियों की सेवा-सत्कार करना ही वास्तविक पूजा है।" स्वामी जी ने उन्हें फिर वैदिक धर्म अंगीकार करने का निमंत्रण दिया, लेकिन उन्होंने यह निमंत्रण स्वीकार नहीं किया।

बम्बई में स्वामी जी का भाषण सुनने के लिए ऑक्सफोर्ड में संस्कृत के प्रोफेसर मोनियर विलियम्स और बंबई के कलेक्टर मि. शेफर्ड भी आए। उनसे वार्तालाप के दौरान स्वामी दयानंद सरस्वती ने सिद्ध किया कि अंग्रेजी भाषा भी संस्कृत से ही निकली है। स्वामी जी ने किसी प्रश्न के उत्तर में कहा, "एक बीज में अनन्त बीज उत्पन्न करने की शक्ति है। औषधि से अन्न होता है, अन्न से रेत उत्पन्न होता है और रेत से शरीर उत्पन्न होता है।"

मोनियर विलियम्स ने पूछा कि स्वामी जी क्या ब्रह्मा के चार मुख थे, तो स्वामी जी ने कहा, ''यदि सत्य में ऐसे चार मुख होते तो बेचारे ब्रह्माजी को बड़ा ही दुःख हुआ होता और फिर बेचारे सुख से कैसे सोते? तो ऐसा नहीं है, किन्तु 'चत्वारो वेदा मुखे यस्य इति चतुर्मुख', ऐसा समास करना चाहिए।'' वे इस उत्तर को सुनकर खुश हुए तो उन्होंने ईसा पर टिप्पणी की, ''कोई मां बेटा जनकर क्वारी कैसे हुई और बिन पुरुष के क्वारी मां बनी कैसे? सच यह है कि ईसा के जन्म की घटना ही काल्पनिक है।''

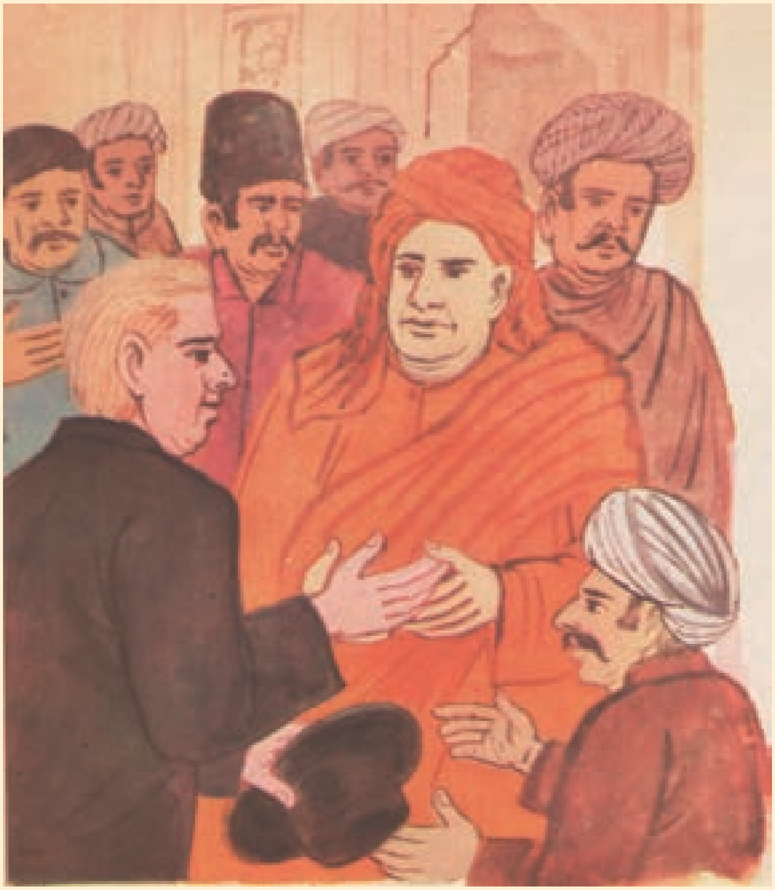

एक दिन सैर से लौटते हुए एक गाड़ी देखी जो कीचड़ में धंस गई थी। बैल भी वहीं फंसे खड़े थे। गाड़ीवाला बैलों पर डंडे बरसा रहा था, पर बैल हिलने में ही नहीं आते थे।

स्वामीजी को बड़ा दुःख हुआ,
''हे प्रभु! गौ पुत्रों पर ऐसा कहर...।''
वे स्वयं कीचड़ में उतरे।
स्वामीजी ने स्वयं गाड़ी को खींच झट कीचड़ से बाहर किया।

स्वामी जी ने एक ओर जहां लोगों के लिए सें सत्यार्थ प्रकाश, वेदभाष्य जैसा उत्कृष्ट प्रेरणादायक धार्मिक साहित्य तैयार किया, वहीं राजाओं को पराधीनता के अवगुणों से भी वे अवगत करा रहे थे।

भड़ौच में महर्षि दयानंद जी ने अपने प्रवचन में कहा, ''मनुष्यों में स्वभाव से ऐसी इच्छा होती है कि लोग हमें अच्छा कहें, हमारी सुकीर्ति हो, आस-पास के लोग भला कहें, हमारे आचरण को ठीक कहें इत्यादि। हर कोई अपने को अच्छा कहलवाना पसंद करता है, लेकिन अच्छा बनना बहुत कठिन है।''

महर्षि दयानन्द के साथ पंडित कृष्णाराम भी रहते थे। एक दिन पंडित जी को ज्वर हो आया। महर्षि स्वयं उनका सिर दबाने लगे। पंडित जी ने कहा, ''महाराज, आप क्या करते हैं? मैं आपसे कैसे सेवा करा सकता हूं?''

महर्षि बोले, ''इसमें कोई हानि नहीं है। दूसरों की सेवा करना मनुष्य का धर्म है। यदि बड़े, छोटों की सेवा न करेंगे, तो छोटों में सेवा का भाव कैसे होगा?''

स्वामी दयानंद जी ने जहां अनेक राजा-महाराजाओं को देशभक्ति एवं वेदभक्ति का पाठ पढ़ाया, वहीं अपने न रहने की स्थिति में उन्होंने अपना एक वसीयतनामा भी तैयार करवाया। यह स्वीकार पत्र अनेक गणमान्य लोगों की उपस्थिति में तैयार किया था। स्वामी जी चाहते थे कि संसार का उपकार किए बिना वेदों का प्रचार संभव नहीं है।

स्वामी दयानंद जी ने परोपकारिणी सभा बनाई और इस सभा का स्वीकार पत्र यानी वसीयतनामा उदयपुर दरबार में पढ़कर सुनाया गया। उदयपुर नरेश महाराणा श्री सज्जन सिंह परोपकारिणी के प्रधान बनाए गए थे।

पंडित लेखराम ने स्वामी जी से भेंट की और हमेशा के लिए उन्हीं के हो गए।

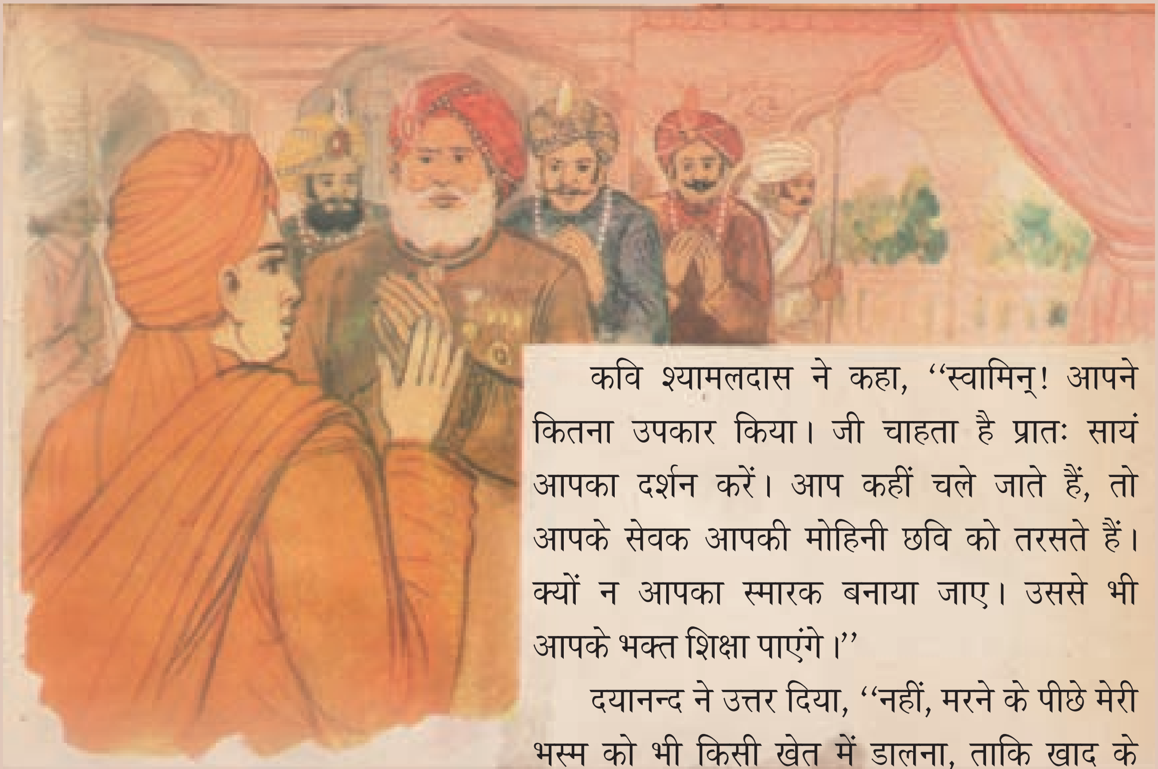

कवि श्यामलदास ने कहा, ''स्वामिन्! आपने कितना उपकार किया। जी चाहता है प्रातः सायं आपका दर्शन करें। आप कहीं चले जाते हैं, तो आपके सेवक आपकी मोहिनी छवि को तरसते हैं। क्यों न आपका स्मारक बनाया जाए। उससे भी आपके भक्त शिक्षा पाएंगे।''

दयानन्द ने उत्तर दिया, ''नहीं, मरने के पीछे मेरी भस्म को भी किसी खेत में डालना, ताकि खाद के काम आए। इन स्मारकों से ही मूर्ति-पूजा चली है।''

स्वामी जी किसी भी पुस्तक की पांडुलिपि तैयार करने के बाद उसे कुछ श्रेष्ठ लोगों को प्रकाशित होने से पहले सुनाते भी थे और लोगों के विचार सुनकर उचित संशोधन भी उसमें करते थे। राजा और रंक उनके साहित्य प्रकाशन के लिए दिल खोलकर दान देने लगे थे। इससे ज्ञान का प्रकाश चारों ओर फैलने लगा।

जोधपुर की ओर जाते हुए किसी ने ऋषि दयानन्द से कहा, ''स्वामीजी! यह गंवारों का देश है। लोग समझेंगे कुछ नहीं और मुफ्त में प्राण हर लेंगे।'' स्वामीजी ने उत्तर दिया, ''गंवारों को समझाना ही तो मेरा मुख्य काम है। तुम कहते हो, वे मार डालेंगे। यदि वे मुझे जीते हुए की एक-एक अंगुली को काट लें तो मेरा जीवन सफल होगा।'' स्वामी जी अजमेर से पाली पहुंचे। उन दिनों पाली से आगे रेल नहीं थी। रास्ते में खूब जोरदार बरसात हुई। स्वामी जी का सारा सामान भी बरसाती आंधी में उड़ गया। किसी ने कहा, 'आप तो संत हैं, क्या तुम्हें बरसात आने का अनुमान नहीं था', तो स्वामी जी बोले, ''अनुमान के तीन प्रकार हैं : 'शेषवत्, पूर्ववत्, सामान्यतोदृष्टम्' पूर्ववत् अर्थात् कारण से कार्य का अनुमान, शेषवत् अर्थात् कार्य से कारण का अनुमान, सामान्यतोदृष्टम् अर्थात् संसार में जिस प्रकार की व्यवस्था दिखाई देती है, उस पर से जो अनुमान होता है, वह। मौसम की सटीक भविष्यवाणी संभव नहीं।''

स्वयं जोधपुर नरेश ने स्वामीजी को राजमहल में बुलाया था। स्वामीजी वहां गए तो वह शिष्य बन गया और उनसे राजधर्म की शिक्षा लेने लगा। स्वामी जी ने एक दिन उन्हें कहा, "प्राचीन समय के राजा लोग युद्ध के समय रथों में बैठे भोजन किया करते थे। इस समय भी राजपूतों में ठाकुर लोग अवसर आने पर ऐसा ही करते हैं। राजपूत लोग जिस स्थान पर जो चाहें खाते हैं। एक को राजा बनाना और उसी की बुद्धि पर सारे काम का बोझ रखना बुद्धिमानी नहीं है। निदान, महाराज को उचित है कि मन्त्रियों समेत छः बातों पर विचार करें : 1 मित्र और 2 शत्रु में चतुरता, 3 अपनी उन्नति, 4 अपना स्थान, 5 शत्रु के आक्रमण से देश की रक्षा, 6 विजय किए हुए देशों की रक्षा, स्वास्थ्य आदि प्रत्येक विषय पर विचार करके यथार्थ निर्णय से जो कुछ अपनी और दूसरों की भलाई की बात विदित हो, उसे करना।" दयानंद के उपदेश से धीरे-धीरे स्वेच्छाचारी शासक का आचार भी सुधरने लगा और वे राष्ट्रहित में सोचने लगे।

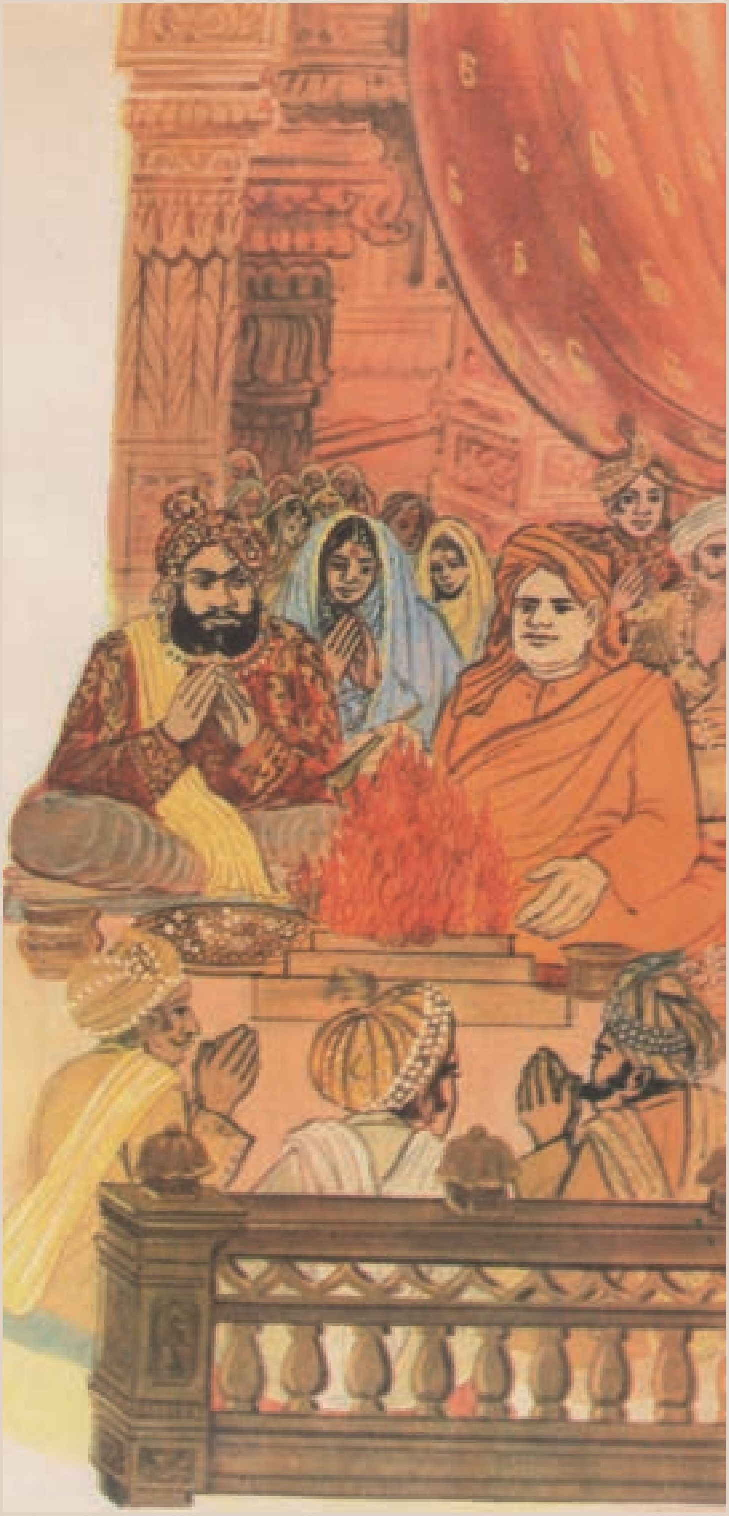

स्वामी जी ने महाराज के अवगुण देखकर एक दिन कहा, ''आर्य लोगों ने वेदों का अनुकरण करके जो व्यवस्था की, वह सर्वत्र प्रचलित है। लेकिन उसमें दोष आ गए हैं।''

स्वामीजी ने सुना कि राजा ने एक वेश्या नन्हीं जान रखी हुई है। एक दिन दरबार में वेश्या नन्हीं जान की पालकी दिख गई। स्वामीजी से न रहा गया। उन्होंने स्पष्ट कहा कि, ''शेर के लिए कुतिया का संग बहुत बुरा है।'' फिर सहज होते हुए स्वामी जी बोले, ''जब तक सारे संसार में वैदिक व्यवस्था पुनः स्थापित नहीं होगी, संसार सुखी नहीं हो सकता। तुम भोग-विलास छोड़कर वेदों की ओर लौटो।''

वेश्या ने कुतिया कहने के अपमान का बदला लेने के लिए रसोईया को लालच देकर स्वामी जी को दूध में विष पिलवा दिया। स्वामी जी दूध पीने के बाद समझ गए कि उन्हें विष दे दिया गया है, तो उन्होंने रसोईया को बुलाकर उसे 500 रुपये देकर कहा, ''ले, नेपाल देश भाग जा। वहां तुझे कोई न पकड़ेगा। मेरा मरना निश्चित है। सो किसी को शंका न होगी कि तुमने मुझे विष देकर मार डाला है।''

एक के बाद एक कई चिकित्सकों ने स्वामी जी का उपचार करना शुरू किया, लेकिन जो भी चिकित्सक आता वह पहले ही शत्रुओं द्वारा खरीद लिया जाता और दवाई के स्थान पर उन्हें विषरूपी औषध ही दी जाने लगी, जिससे उनका स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन गिरता ही चला गया। जोधपुर से आबू आए तो पालकी पर, वहां से अजमेर गए तो पालकी पर। अजमेर में एक दिन अंत समय जानकर महर्षि ने हजामत कराई, शरीर साफ कराया।

स्वामी जी ने दिन पूछा तो किसी ने बताया कि दीपावली है, तो उन्होंने उठकर प्रार्थना की। कुछ देर वेदमंत्रों का पाठ करते रहे। अन्त में कहा, ''हे ईश्वर! तूने अच्छी लीला की। ईश्वर! तेरी इच्छा पूर्ण हो'' और महर्षि ने भिनाय कोठी में प्राण छोड़ दिए। उस समय महर्षि दयानन्द सरस्वती की आयु उनसठ वर्ष की थी।

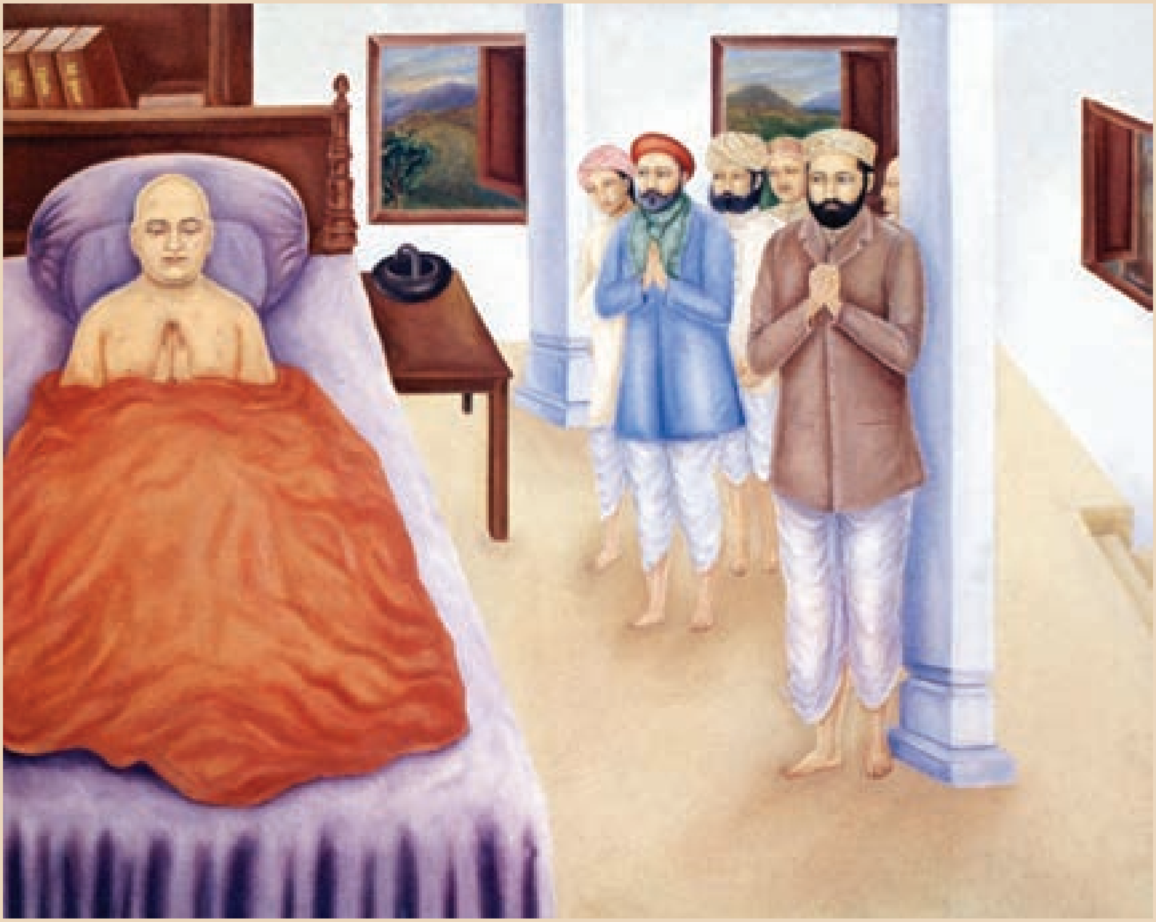

‘स्वर्ग’ नाम सुख विशेष भोग और उसकी सामग्री की प्राप्ति का है। स्वर्ग अर्थात् सुख विशेष अथवा विद्या और नरक अर्थात् दुःख विशेष अथवा अविद्या है।

...

विद्या स्वर्ग प्राप्ति का तथा बुद्धि-वर्धन का कारण है। बुद्धि-वर्धन को शारीरिक दृढ़ता अवश्य चाहिए और शुद्ध वायु, शुद्ध जल और शुद्धान्न के बिना शरीर-दृढ़ता कैसे प्राप्त होगी?

मृत्यु अर्थात् जीव का और शरीर का वियोग होना है। मृत्यु के बाद जीव यम की ओर जाता है अर्थात् वायु में, वायु के द्वारा अन्य योनि के बीच उसका प्रवेश होता है।

...

मृत्यु-समय में यमदूत जीव को ले जाता है इससे यह आशय समझें कि वायु जीव का हरण करता है। अस्तु, वायु मनुष्य का हरण करता है और फिर पुनर्जन्म प्राप्त होता है।

...

मरने पर जीव वायु में मिलता है, ऐसे हमारे उपदेश से कट्टहा लोगों की हानि होगी, विद्वानों की क्या हानि हो सकती है? अर्थात् विद्वानों की कुछ भी हानि नहीं है। हां! अवश्य धूर्तों की हानि हो तो हम निरुपाय हैं।

- स्वामी दयानंद

महर्षि दयानंद सरस्वती द्वारा व्यवहृत कुछ सामग्री का दिग्दर्शन।

अंतर्राष्ट्रीय महासम्मेलन 2018 के अवसर पर इस पुस्तक की लेखिका मधु धामा, जो कि जन्म से मुस्लिम हैं और स्वामी दयानंद की परमभक्त हैं, का एक चित्र स्वामी जी के कटआउट के पास।

वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है!

महर्षि दयानंद के नाम पर स्थापित तेलंगाना में रेलवे स्टेशन का एक दृश्य

भारत माता के मंदिर में स्वामी दयानंद सरस्वती की स्थापित मूर्ति

महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय रोहतक, हरियाणा में स्थापित दयानंद की प्रतिमा

महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, राजस्थान में स्थापित दयानंद की प्रतिमा

महर्षि दयानंद की स्मृति में मोरिशस में जारी किए डाक टिकट

भारत में जारी किए
डाक टिकट

महर्षि दयानंद के पथ के पथिक

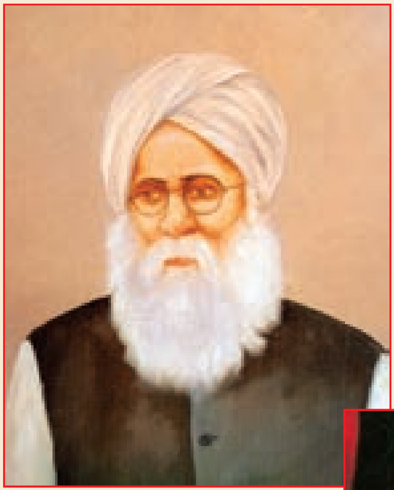

महात्मा हंसराज

लाला लाजपत राय

पं. लेखराम

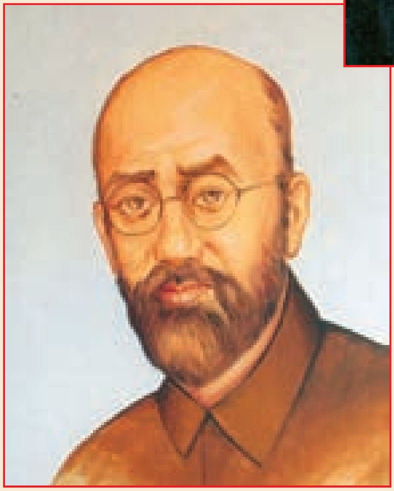

श्याम जी कृष्ण वर्मा

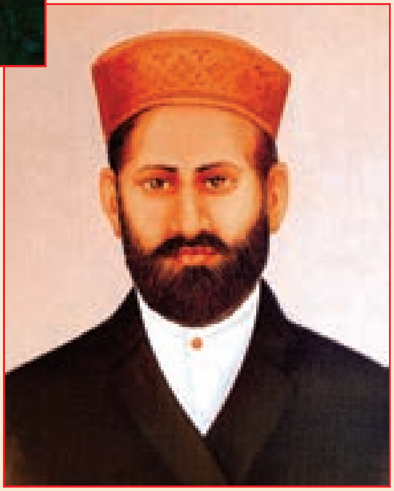

गुरुदत्त विद्यार्थी

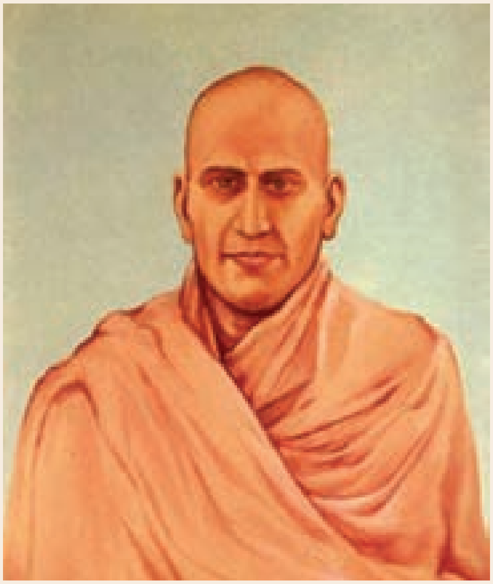

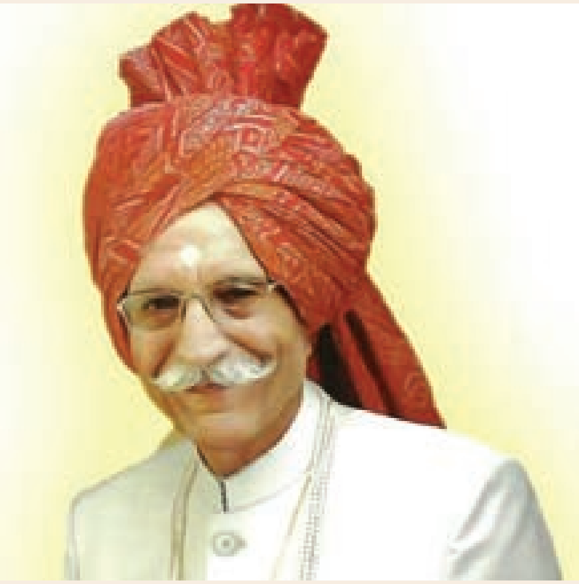

स्वामी दयानंद के उत्तराधिकारी स्वामी श्रद्धानंद और वर्तमान में आर्य समाज के सर्वोच्च संगठनकर्ता महाशय धर्मपाल जी

स्वामी दयानंद के स्वदेशी का सपना पूर्ण करने वाले बाबा रामदेव से दयानंद जी के जीवन पर आधारित सीरियल पर चर्चा करते सन ऑफ आर्यवर्त से विभूषित लेखक तेजपाल सिंह धामा।

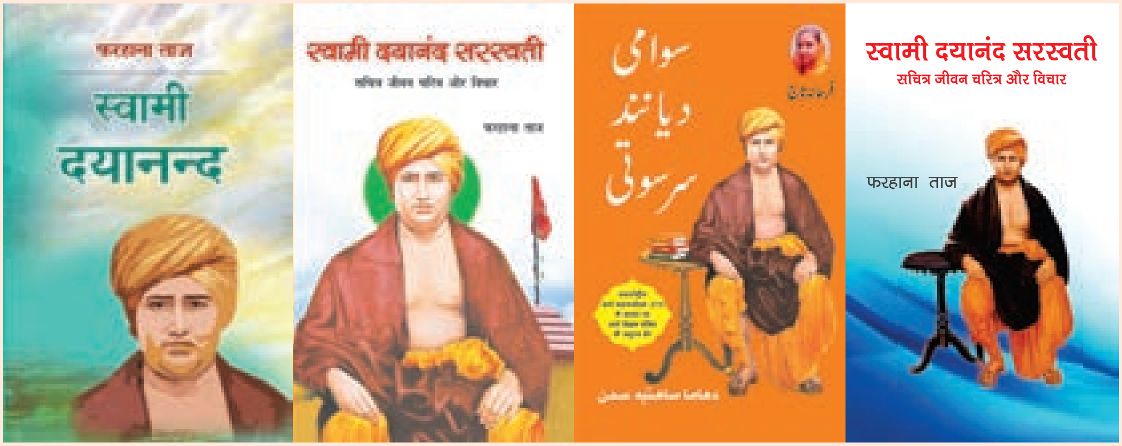

संदर्भ ग्रंथ : फरहाना ताज की स्वामी दयानंद पर लिखी जीवनी की कुछ अन्य पुस्तकें

श्रीराम सेंटर दिल्ली में फरहाना ताज के जीवन पर आधारित 'घर वापसी' नाटक के ऐतिहासिक मंचन के अवसर पर ग्यारह भाषाओं में स्वामी दयानंद के अमर ग्रंथ 'सत्यार्थ प्रकाश' का लोकार्पण करते जैन संत लोकेश मुनि एवं आर्य समाज के अधिकारी सर्वश्री धर्मपाल आर्य जी, विनय आर्य जी, अनिल आर्य जी, लेखक तेजपाल सिंह धामा, मधु धमा एवं अन्य।